RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 61   अंक : 11   प्रकाशन तिथि : 25 अक्टूबर   कुल पृष्ठ : 36   प्रेषण तिथि : 4 नवम्बर 2024

शुल्क एक प्रति : 15/-   वार्षिक : 150/- रुपये   पंचवर्षीय 700/- रुपये   दस वर्षीय 1300/- रुपये

कितने जगमग दीपक जलते, आँख नहीं तो व्यर्थ जले हैं
करने आए कर न सके तो, जीवन तरुवर व्यर्थ फले हैं

Manufacturer of Mattresses : Sofa Set & Furniture

Vision Comfort Line+ Mattress

स्प्रिंग मैट्रेस

HARSH CORPORATIONS

68 Giriraj Nagar, Govindpura, Kalwar Road, Jaipur +91 97173 59655

Nanda Sales

"AA" Class Govt. Contractor PHED & JDA

SPECIALIST IN ALL WATER PIPELINE PROJECT, BUILDING, ROAD WORK

Nand Kishor (Ashok Swami)
Durga Lal

Mob. +91 9314054800,
+91 9314517014
Phone : 0141-2225982
Email : nanda4800@yahoo.com

Shop No. 24 Ambay Market, Ajmer Road, Jaipur

संघशक्ति

4 नवम्बर, 2024

वर्ष : 61 अंक : 11

-: सम्पादक :-

राजेन्द्र सिंह राठौड़

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैन सिंह बैठवास	07
❍ जागृति	✍ श्री बलवंत सिंह पांची	09
❍ महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें	✍ श्री जयदयाल जी गोयन्दका	13
❍ संत शिरोमणी सती माता रूपकंवर जी.....	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	18
❍ भीष्म प्रतिज्ञाधारी चूंडाजी सीसोदिया	✍ डॉ. श्री मातुसिंह मानपुरा	21
❍ पन्नाधाय खींची	✍ श्री युधिष्ठिर	22
❍ संघ यात्रा	✍ स्व. श्री गोपालसिंह जालिया	27
❍ अपनी बात	✍	33

समाचार संक्षेप

शिविर सम्पन्न :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के गांधीनगर (गुजरात) में सम्पन्न उच्च प्रशिक्षण शिविर के पश्चात नये सत्र के शिविर प्रारम्भ हुए। जून, जुलाई माह में नये शिविरों की मांग आती रही और शिविर प्रारम्भ हो गए। अब तक (अक्टूबर माह तक) कुल 126 शिविर सम्पन्न हो चुके हैं। इन शिविरों में एक छोटे बालकों का शिविर था, 14 बालिकाओं के शिविर थे और 111 शिविर बालकों के थे। चार शिविर सात दिवसीय थे, शेष शिविर 4 दिवसीय थे। संघ के सभी संभागों में प्रान्तीय स्तर पर भी सक्रियता रही जिसके कारण शिविरों में संख्या भी बहुत रही। इतने अधिक शिविर सम्पन्न होने के कारण शिविर संचालकों की संख्या भी खूब बढानी पड़ी। कई नये स्वयंसेवक भी संचालन दायित्व निभाने के लिए लगाए गए। सभी ने पूरी रुचि ली और सुचारू रूप से शिविर संचालन का अनुभव प्राप्त किया। पहली बार ऐसे दायित्व निभाने का अवसर हो तो कुछ छोटी-मोटी भूलें भी होने की संभावना रहती है, पर जागृत स्थिति बनाए रखने पर भूलें होती ही नहीं और अगर हो जाती हैं तो तुरन्त ध्यान और अधिक केन्द्रित हो जाता है। ऐसे ही अनुभव सुदृढता प्राप्त करते रहते हैं।

अन्य कार्यक्रम :

अत्यधिक शिविरों से फैली ताजगी के कारण सामाजिक त्योहार जगह-जगह मनाए जाने लगे हैं। जहाँ सुविधा हो, थोड़ा बड़े पैमाने पर मना लेते हैं अन्यथा अपनी शाखाओं में भी मनाया जाने लगा है। अभी विजयादशमी का त्योहार आया तो अनेक जगहों से समाचार मिल रहे हैं कि उनके वहाँ त्योहार मनाया गया। बड़े शहरों में अधिकतर सामुहिक रूप से त्योहार मनाए जाते हैं- पर इस बार विजयादशमी का त्योहार श्री क्षत्रिय युवक संघ ने भी जयपुर में तीन जगह सम्पन्न किया। सभी जगह बड़ी संख्या में उपास्थिति रही। एक कार्यक्रम में संघ प्रमुखश्री का सान्निध्य मिला। दूर-दूर बैठे स्वयंसेवकों की इच्छा रहती है कि हमारे यहाँ भी मनाया जाए ताकि आसपास के सामाजिक बन्धुओं से सम्पर्क बने, निकटता आए। कार्यक्रमों में माहिलाओं की भी उपस्थिति रही। महाराणा शेखाजी का जन्म दिवस भी दशहरा ही है। इसलिए सभी कार्यक्रमों में महाराव शेखाजी की भी जयन्ती मनाई गई। सर्वधर्म समभाव और नारी सम्मान के क्षेत्र में महाराव शेखाजी का जीवन श्रेष्ठ उदाहरण है। महाराव शेखाजी का कार्यक्रम भवानी निकेतन जयपुर में सुबह मनाया गया और दोपहर को अमरसर में सम्पन्न हुआ। हमारे महापुरुषों की जयंतियाँ मनाई जाती रहे, यह आवश्यक है। जयमल जी की जयन्ती भी समारोह पूर्वक मनाई गई। बूंदी के महाराव सूरजमल हाड़ा की छतरी को ध्वस्त करने की सरकारी ओछी हरकत के खिलाफ समाज का जबरदस्त गुस्सा फूटा। समाज की प्रतिक्रिया देखकर अनेक विधायकों ने भी अपनी नाराजगी सरकार तक पहुँचाई। इस प्रबल विरोध के कारण ही उसी स्थान पर छतरी का निर्माण पुन: किया जा रहा है। अनेक जगह से शाखा के स्वयंसेवकों के भ्रमण के कार्यक्रमों की सूचनाएँ मिल रही हैं। क्षात्रपुरुषार्थ फाउण्डेशन ने भी अपने कार्यक्रम रखे हैं तथा सामाजिक आवश्यकता के लिए सरकार तक बात पहुँचाने हेतु ज्ञापन पूरे राज्य से भिजवाने का काम भी करते रहे हैं। आयुवानसिंह जी की जयन्ती भी जगह-जगह मनाई जाने के समाचार हैं। ●

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर सियाणा (जिला-बीकानेर) में 24.10.1992 को माननीय भगवानसिंह जी रोलसाहबसर द्वारा दिए गये विदाई उद्‌बोधन का संक्षेप}

ग्यारह दिन पूर्व इसी स्थान पर आपका स्वागत करते हुए आपसे आग्रह किया था, स्वागत से पूर्व निवेदन किया गया था कि स्वागत करवाने से पूर्व कहीं से विदाई लें। विदाई कोई उत्तरदायित्वों से लेने की बात नहीं है, विदाई लेनी है, हमारी अनुपयुक्त मान्यताओं से, हमारे स्वभाव में पनपी विकृतियों से, हमारे जीवन के उद्देश्य के प्रति अकर्मण्यता से। इनसे विदाई लेना कोई आसान कार्य नहीं है क्योंकि हम मोह और विभिन्न प्रकार के जंजालों में फंसे हुए हैं। अत: ऐसी विदाई लेने के लिए साधना की आवश्यकता है।

अभ्यास और वैराग्य की साधना के माध्यम से ही ऐसी विदाई ली जा सकती है। यहाँ दस दिनों तक हम अनुशासन में रहे हैं। अपने आपको नियंत्रित कर समय पर उठे हैं, हर कार्यक्रम में व्यस्त रहे हैं, जिनको पहले जानते तक नहीं थे, ऐसे बन्धुओं से भी निकटता बढी है। अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए हमें कैसा बनना है, कैसे रहना है, कैसे व्यवहार करना है यह सब इस साधना से हमने सीखा है। जो करना है उसका अभ्यास किया है, जो नहीं करना है उससे वैराग्य किया है। यह कार्य कष्टदायक तो जरूर होता है लेकिन ऐसा करना कितना आनन्ददायक है।

जिन लोगों ने ऐसी निरर्थक आदतों से विदाई ली है, उनका स्वागत करने के लिए पूरा जगत तत्पर रहता है। कुछ लोग ऐसी विदाई नहीं ले सके उनको यहाँ अच्छा महसूस नहीं हो सका होगा, तब उनका स्वागत भी समय ने नहीं किया है किन्तु जिन्होंने ऐसी विदाई ली है उन्होंने अत्यन्त आनन्द महसूस किया है। जब तक व्यक्ति ऐसा आनन्द महसूस नहीं करता, तब तक उसे विराटता का बोध नहीं हो सकता। विराट ही ब्रह्म या परमेश्वर है। साधना के बिना हम नहीं जान सकते कि ईश्वर क्या है? जगत क्या है? ज्योंही साधना की प्रक्रिया से हम निकलते हैं तो विराटता का बोध होने लगता है। जब हमारा ध्यान विराटता की ओर जाएगा तब हमारा ध्यान सृष्टा के बारे में सोचने के लिए जाएगा। हमे सांसारिक कोलाहल से दूर रहकर यहाँ नीरवता का लाभ पाया, इसके लिए हम भाग्यशाली हैं।

यहाँ आकर हमने अपनी सार्थकता महसूस की। हमें यहाँ शुद्ध, पवित्र तत्व मिला। इससे हमें यह बोध हुआ कि हम सब समीप आ गए हैं। हमें एक जातीय भाव, एक सामाजिक भाव का ही नहीं बल्कि हमें तो हम सब के एक परिवार के भाव का बोध होने लगा है। यह अनुभव मुझे बहुत स्पष्ट रूप से हो रहा है, अतः यह निश्चित रूप से आपको भी हुआ होगा। संसार की यह अनूठी व्यवस्था किसी व्यक्ति की बनाई हुई नहीं है बल्कि यह तो अपौरुषेय है। जो आनन्द हमने यहाँ पाया है उसका आयोजन कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। यह सब कुछ हमारा नहीं मानें। श्री क्षत्रिय युवक संघ एक भागवत प्रेरणा का कार्य है। इसीलिए तो हम संसार से अलग होकर भी एक दूसरे के निकट आए हैं।

हमारे ऊपर भगवान की कितनी असीम कृपा है कि संसार से अलग होने पर भी हमें बिछुड़ने नहीं दिया। संसार तो इस दृष्टिकोण से किलबिलाते कीड़ों की तरह है। हम किलबिलाते कीड़ों के संसार से निकल कर यहाँ तक पहुँचे हैं। भाग्य ने हमें लाकर अब यहाँ खड़ा कर दिया। हम माँ भगवती के मंदिर के पिछवाड़े में खड़े हैं। काल भैरव से

पूछें कि तुम्हारी चाह क्या है। इसके लिए भैरव जी के सामने जाकर खड़ा होना है। अब हम इसके लिए तैयार हैं तथा माँ भगवती हमें ऐसी प्रेरणा दे कि हम भैरव जी के सामने खड़े होवें तथा काल भैरव हमारा स्वागत करे।

हम यदि कहीं से विदाई लेंगे तो कई लोग हमारा स्वागत करने के लिए तैयार हैं। उस स्वागत के लिए हम आवश्यक शर्त पूरी कर हम तैयार हो जावें। हमने यहाँ यह भी अनुभव किया कि श्री क्षत्रिय युवक संघ का स्वागत कौन करता है। माँ भगवती जनमानस के रूप में हमारा स्वागत करते हुए कहती है कि 'आओ पुत्रो! अपने पुरुषार्थ का डंका बजाओ। तभी इस शिविर की सार्थकता बढ़ेगी। आप जिस प्रक्रिया से निकल कर आए हो उसमें कष्ट, प्रताड़ना, उलाहना थी। पर उससे जो निकला वही इस आनन्द को प्राप्त कर सका है।' जो हरियाली हमने यहाँ पर पाई वह पतझड़ में न बदल जाए।

आप जिस संभार में वापिस जा रहे हो, वहाँ पर असंस्कारिता के कीड़े किलबिला रहे हैं। वे काटने को दौड़ेंगे लेकिन एक दूसरी व्यवस्था भी है जिसमें माँ भगवती स्वागत करती है। हमें अपने सद्संस्कारी व्यवहार से उस स्वागत की ओर ही बढ़ना है। जब हाथी बाजार में चलता है तो कई जानवर भौंकते हैं। हाथी उन जानवरों की परवाह किए बिना मस्त चाल से चलता रहता है। हमें भी उसी भाँति गजगति से संसार में आगे बढना है, साधना कर्म में आगे बढना है। जो भौंकते हैं, उन्हें भौंकने दें, आप उतावलापन न बरतें। धैर्य एवं कर्तव्य मार्ग पर बढते रहें।

श्री क्षत्रिय युवक संघ ने माँ के रूप में जो प्रेम हमें प्रदान किया है, उसे अमृत समझकर बाँट देना चाहिए। जो बांटते हैं, वे देवता होते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने हमें देवत्व प्रदान किया है। देवत्व की राह पर बढने के लिए कई प्रकार की बाधाएँ आएंगी। उनका मुकाबला करें और बढते रहें। सदैव जागृत रहें कि हमने जो प्राप्त किया है, वह हमारे हाथ से गिर न जाए। माँ भगवती से प्रार्थना करें कि माँ! तुम ही मेरी इस उपलब्धि की रक्षक हो।

मैं तो यही कहता हूँ- ''जीवो रे भाईड़ां जीवो रे...'' पूज्य तनसिंह जी ने तो कहा था कि तुम युगों-युगों तक जीवित रहो, अर्थात् तुम्हारे मन में सद्प्रेरणा के भाव युगों-युगों तक जीवित रहें। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने हमें जो प्रदान किया है, वह हमारे लिए प्रसाद है, माँ भगवती को अर्पित करने से पूर्व वह न गिर जाये। इसके लिए हमें सावधान रहना पड़ेगा। यदि हम अन्त तक उस प्रेरणा प्रसाद को हमारे हाथ से नहीं गिरने देते हैं और उसे माँ भगवती को अर्पित करते हैं तो वह अवश्य ही हमारे जीवन में निखार लाएगा। इससे हम देवत्व की ओर बढ़ेंगे। इसी आशा के साथ श्री क्षत्रिय युवक संघ आपको इस शिविर से विदाई देता है।

●

अपने पिता परमेश्वर के नियंत्रण से ऊब कर मनुष्य ने बुद्धि को अपनी स्वामिनी बनाया। प्रत्येक मनुष्य में एक असंतुष्ट व्यक्तित्व है जो भूखा है। बुद्धि के कलाप उस भूख को मिटाते हैं। सच तो यह है कि वह भूख मिटाती नहीं बल्कि यह आभास करा देती है कि हमारी भूख मिट गई है। बुद्धि इसीलिए कभी रिक्त नहीं होती। जब व्यक्तित्व रीता हो जाता है तब बुद्धि उसे फैंक देती है। तब वही बुद्धि असंतोष, विद्रोह तथा विक्षोभ आदि के पैदा होने का कारण बन जाती है।

– पूज्य तनसिंह जी की डायरी से

पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

श्री आयुवानसिंह जी की क्षत्रिय युवक संघ के काफी शिविरों में भाग ले चुके थे और एक योग्य वक्ता और शिक्षक के रूप में उन्हें उभरते देख 1954 में श्री क्षत्रिय युवक संघ के जीणमाता ओ.टी.सी. शिविर में उन्हें संघ प्रमुख चुना गया। पाँच वर्ष पश्चात सन् 1959 के हल्दी घाटी ओ.टी.सी. में संघप्रमुख का चुनाव फिर हुआ और की आयुवानसिंह जी को पुनः संघप्रमुख चुन लिया गया। इसी शिविर में श्री आयुवानसिंह जी द्वारा कुछ योजनाएँ बनाई गई जो पूज्य श्री तनसिंह जी के अनुसार श्री क्षत्रिय युवक संघ के मौलिक उद्देश्य व प्रणाली के अनुकूल नहीं थी। श्री आयुवानसिंह जी की ''पंचसूत्र'' योजना को पूज्य श्री तनसिंहजी का मानस स्वीकार नहीं कर पा रहा था। श्री क्षत्रिय युवक संघ राजनीति को साध्य नहीं, साधन के रूप में स्वीकार करता है। ''पंच सूत्र'' की योजना श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्कार निर्माण और निष्काम कर्म योग द्वारा शक्ति–उपासना के मार्ग से भिन्न मार्गी थी। विचार–विमर्श हुआ, पर सहमति नहीं हो पाई। पूज्य श्री तनसिंह जी इस योजना को श्री क्षत्रिय युवक संघ के अलावा अन्य माध्यम से लागू करने के विरुद्ध नहीं थे, किन्तु संघ को माध्यम बनाना उचित नहीं मानते थे, इसलिए उन्होंने दिनांक 12–09–1959 को एक पत्र संघ प्रमुख श्री आयुवानसिंह जी को लिखा–

''मेरी आपके प्रति श्रद्धा थी। मैं आपकी भावनाओं और कार्य शक्ति की प्रशंसा करता था। मैंने आपका आदर किया था सोचा–कि हम राम लक्ष्मण हैं।... परन्तु बड़ी अनिच्छापूर्वक जब पृथक हो रहा हूँ, तो आपके प्रति मैं अपना अन्तिम कर्तव्य निभा लूँ कि मैं सभी बातें सही–सही, जैसे मैं सोचता हूँ लिख कर निवेदन करूँ।......''

इस पत्र में उन्होंने अपनी असहमति व्यक्त करते हुए अपने संचालक प्रमुख और शिविर कार्यालय प्रमुख के उत्तरदायित्व से त्याग पत्र दे दिया।

इस पत्र के उत्तर में भुज (गुजरात) से दिनांक 28 सितम्बर, 1959 को श्री आयुवानसिंह जी ने पूज्य श्री तनसिंह जी को पत्र लिखा–

''....आपका यह काम उचित नहीं है क्योंकि इस संघ के आप जन्मदाता हैं, आपने ही अपने अथक परिश्रम और शक्ति से इसमें प्राण प्रतिष्ठा की है। आज संघ जो कुछ भी है, यह आपकी भावनाओं, कार्यशक्ति, विचार–धारा और प्रेरणा का ही मूर्त रूप, विस्तृत और व्यापक रूप है। मैं तो क्या, आज मेरी दृष्टि में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो आपके अभाव में संघ को संचालन करने की कल्पना भी कर सकता हो।...आप भलीभाँति जानते हैं कि पहले भी मेरे पर संघप्रमुख का दामित्व थोपा गया था और इस बार भी आपने एक प्रकार से खुला Convessing करके मेरे पर यह भार फिर से थोपा था।...'

इसी पत्र के साथ दिनांक 29 सितम्बर, 1959 को जोधपुर से श्री आयुवानसिंह जी ने अपना त्याग पत्र पूज्य श्री तनसिंहजी को भेज दिया। अगले दशहरे पर जैसलमेर शिविर में दोनों की उपस्थिति में संघ के संविधान में संशोधन किए गए, उनके अनुसार 6 नवम्बर, 1959 को वैधानिक रूप से मंशा माता शिविर में श्री तनसिंह जी पुनः संघप्रमुख बने।

वे दोनों परस्पर आदर करते थे। सन् 1954 से 1959 के काल में जब श्री आयुवान सिंह जी संघप्रमुख थे, पूज्य श्री तनसिंह जी अपनी डायरी में एक जगह लिखते हैं–

''मैं कभी साथ चलते समय उनसे आगे नहीं चलता था। सदैव पीछे ही चलता। उनको दाहिनी ओर रखकर चलता। बातचीत के समय सदैव सामने रहता। वे खड़े रहते तो मैं बैठता नहीं था। उनको मैंने राम का दर्जा दिया और अपने आपको लक्ष्मण मानता था।

श्री आयुवानसिंह जी जब कैंसर की बीमारी के

शिकार हो गये थे, उस वक्त पूज्य श्री तनसिंह जी ने दिल्ली से उन्हें एक पत्र लिखा–

29 साउथ एवेन्यु नई दिल्ली–11
23 नवम्बर, 1964

पूज्य आयुवानसिंह जी

जय संघ शक्ति।

यदि इस जीवन में कभी आपके प्रति सच्ची श्रद्धा, प्रेम अथवा भक्ति से आपको देखा है तो आज इससे कहीं अधिक निश्छलतापूर्वक पत्र लिख रहा हूँ।

आपकी बीमारी ने मुझे चिन्तित किया, उसकी औपचारिक सहानुभूति प्रकट करने के लिए यह पत्र नहीं लिख रहा हूँ, लेकिन मैं अपनी शपथपूर्वक आपको विश्वास दिला रहा हूँ कि मेरे, आपके प्रति किए समस्त दुर्व्यवहारों के लिए मैं सविनय क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझे ध्रुव विश्वास है कि आप मुझे अपना छोटा भाई या दास मानकर अवश्य क्षमा करेंगे। आप स्वयं मानेंगे कि मैंने इस जीवन में यदि सच्चा समर्थन किसी को दिया है तो आपको दिया है और उसके बदले में सच्चा समर्थन पाया है वह आपसे पाया है। इतना सोचने के बाद मुझे यह बात भी बुरी तरह कचोटती है कि कलियुग में राम जैसे भाई के लिए लक्ष्मण ने कितनी अक्षम्य बेहुदगियाँ की हैं। लक्ष्मण के साथ अपनी तुलना करते हुए भी मैं शर्म से गड़ा जा रहा हूँ। आपकी बीमारी का हाल अखबारों में पढ़कर मुझे विशेष क्षोभ इसलिए हुआ है कि कहीं आपकी रुग्णावस्था का कारण मेरे दुर्व्यवहार का सदमा तो नहीं है। इसलिए आपके प्रति सहानुभूति प्रकट करने की अपेक्षा मैं आपके सामने इस पत्र द्वारा अपने समस्त व्यवहारों के लिए विनयपूर्वक आपकी शरण में हूँ। यदि मेरी भगवती की प्रार्थनाओं में कुछ भी दम है तो उसका समस्त पुण्य आपको संकल्पपूर्वक भेंट करता हूँ। जिससे परमेश्वर आपको स्वास्थ्य लाभ करें। आपको मित्र मानकर आपकी त्याग शक्ति के सामने मेरी कर्म निष्ठा झुकी है और आपको शत्रु मानकर आपके चरणों में अपना सिर झुका रहा हूँ। अन्ततोगत्वा इसी सत्य की पुष्टि करता हूँ कि बड़े–बड़े ही रहेंगे। काम की बात (1) आपके स्वास्थ्य लाभ के बाद मुझे उसी रूप में एक अनुचर पाएंगे जो पहले से कहीं अधिक श्रद्धालु है। (2) आपकी सेवा के लिए पता नहीं वहाँ क्या व्यवस्था है। यदि आपको अत्यन्त साधारण आवश्यकता हो तो नि:संकोच तत्काल लिखें। कई स्वयंसेवक इस अवसर के लिए अहोभाग्य समझते हैं। श्रीबक्ससिंह आज यहीं है और वह आपकी हर तरह की सेवा के लिए तत्पर है। केवल आपकी आज्ञा चाहिये।

युग युग से आपका तुच्छ
तनसिंह

इसके बाद दिल्ली में श्री तनसिंह जी के पास दो बार श्री आयुवानसिंह जी आए। एक बार तो सपत्नीक आए थे, एक बार भगवतसिंह जी रणसीगाँव के साथ। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती थे तब हालत बहुत खराब थी। पूज्य श्री तनसिंह जी मिलने गए तब उनके साथ श्री नारायणसिंह जी रेड़ा, श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर व एक कोई अन्य था। पूज्य श्री तनसिंह जी वहाँ कमरे में पहुँचे तब लेटे–लेटे ही श्री आयुवानसिंह जी ने बातें की तथा आँखों में विदाई के आँसू आ गए। पूज्य श्री तनसिंह जी के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर मस्तक के लगाए और अवरुद्ध गले से बोले– ''तनजी आखरी राम राम! बोल्या–चाल्या माफ करज्यो।'' पूज्य श्री तनसिंह जी भी अपने आँसुओं को न रोक सके। उपस्थित सभी लोगों के आँसू बह पड़े।

दोनों का अन्तिम मिलन सीकर में हुआ था। श्री आयुवानसिंह जी के स्वर्गारोहण के बाद पूज्य श्री तनसिंह जी ने अपनी डायरी में लिखा–

''मेरा संचित पुण्य भी उन्हें सात माह से अधिक आयु प्रदान नहीं कर सका। दिनांक 25 दिसम्बर, 1966 को मैंने उनके आँसू देखे थे मगर तब तक बाजी बीत चुकी थी। क्या उस समय भी कुछ हो सकता था? प्रभु की नजरों में उनकी इस संसार में आवश्यकता पूर्ण हो चुकी थी, पर क्या मेरी नजरों में भी ऐसा ही हो चुका था? निसन्देह नहीं।''

(क्रमश:)

जागृति

– बलवंत सिंह पांची

ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति मनुष्य है। समस्त चराचर जगत में इससे बढ़कर कोई कृति ईश्वर की नहीं। क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है, जो अन्य प्राणियों से इस कारण सर्वथा भिन्न और अनूठा है, कि वह दूसरों के लिये त्याग कर सकता है। वही एक ऐसी कृति है, जो स्वयं दुखी रहकर अन्य प्राणियों को सुखी देखने की कामना कर सकता है। मनुष्य जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास का मूल कारण उसकी दूसरों के लिये त्याग करने की ही वृत्ति है। यह वृत्ति ईश्वरीय वृत्ति है। इसीलिए ईश्वर को मनुष्य विशेष रूप से प्रिय है। वह उन्नति और मार्गदर्शन के लिये निराकार होकर भी अवतार ग्रहण करता है।

ईश्वर का एक स्वाभाविक गुण है–अभिव्यक्त होना। वह चराचर जगत में, प्रकृति और प्राणियों में, पेड़ों और पौधों और सभी में अभिव्यक्त होता है। हर वस्तु इस सृष्टि में विलक्षण है। यह विलक्षणता ही ईश्वरीय अभिव्यक्ति का स्पष्ट प्रमाण है फिर भी वह सर्वाधिक रूप में मनुष्य में ही अभिव्यक्त होता है। मनुष्य के पास अभिव्यक्त होता है। मनुष्य के पास अभिव्यक्ति का साधन उसका संस्कारी जीवन ही नहीं, वाणी भी है और इसलिए ईश्वर मनुष्य के समीपतम स्थिति में रहता है।

असीम परमेश्वर ससीम में अभिव्यक्त होता है। मनुष्य का एक नपा–तुला जीवन है। वह जन्म जरा को प्राप्त होता है। अन्त में आयु की समाप्ति पर रूपान्तरित होता है। जीवन पर्यन्त उसमें ईश्वरीय कलायें काम करती हैं और मृत्यु के बाद वही कलायें थाती के रूप में मानव समाज को मिल जाती हैं। कोई भी मनुष्य अनन्तकाल तक जीवित नहीं रह सकता। मृत्यु उसके जीवन का स्वाभाविक पटाक्षेप है, किन्तु समाज में शाश्वतता है। वह मनुष्य की मृत्यु के साथ मरती नहीं है। मनुष्य विकसित हो जाय, पर आवश्यक नहीं कि सारा समाज ही विकसित हो जाय। मनुष्य की मृत्यु स्वाभाविक है, पर समाज कभी स्वाभाविक मौत से नहीं मरता। कारण कि मनुष्य और समाज में भेद है। मनुष्य जीवित प्राणी है जबकि समाज जीवित प्राणियों की संस्था है।

प्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी ने लिखा है, कि समाज कभी स्वाभाविक मृत्यु से नहीं मरता। या तो उसकी हत्या कर दी जाती है अथवा वह स्वयं आत्महत्या कर लेता है। संसार के अब तक की सभी जातियों का यही इतिहास रहा है। मनुष्यों की लाखों की तादाद में हत्या कर देने के बाद भी आवश्यक नहीं कि समाज मर जाय। पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान यहूदियों की जो सामुहिक हत्यायें की गई थी, उससे विश्व का समस्त जनमत दहल उठा था, पर केवल व्यक्तियों के विनाश के कारण समाज का विनाश नहीं होता। यहूदियों ने मरकर भी अपने समाज को विश्व के नक्शे में एक राष्ट्र के रूप में पुनः स्थापित कर ही दिया।

जिस प्रकार हाथ–पाँव काटने से व्यक्ति नहीं मरता, बल्कि मृत्यु का कारण उसकी जीवनी शक्ति को कुंठित व नष्ट करना है। उसी प्रकार समाज की हत्या का उपाय यही है, कि उसकी प्राकृतिक और जीवनी शक्तियों का उन्मूल कर दिया जाय। समाजों की हत्या के क्रम संसार में चलते ही रहते हैं। बहुत से प्रयत्न जान–बूझकर भी किए जा सकते हैं और बहुत से प्रयत्न अनजाने में ही हो जाते हैं। पहला तरीका है, समाज की रजोगुणीय शक्ति का विनाश करना। जब समाज नारेबाजी में अधिक विश्वास करने लगता है और संघर्ष करने की प्रवृत्ति से बचना चाहता है, समझ लीजिये उसे राह दिखाने वाले उसकी हत्या करने पर उतारू हो गए हैं।

भारतीय समाज की वैज्ञानिक रूप से हत्या का जाल किसी विदेशी हुकूमत ने इतना नहीं बिछाया जितना अंग्रेजी हुकूमत ने। उस हुकूमत ने जो कुछ हमारा अपना था उस सबसे विमुख करने का हमें प्रयत्न किया। जो समाज अपनी रीति-नीति, अपनी सहज और प्राकृतिक क्षमताओं की अपेक्षा कर दूसरे किसी तथाकथित प्रगतिशील समाज की नकल करने की कोशिश करेगा, उसकी पृथक रूप में अस्तित्व बनाये रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। एक समाज दूसरे समाज से अपनी नैसर्गिक विशेषताओं और विलक्षणताओं के कारण अलग दिखाई देता है। उसे अपने अलग रहने का औचित्य सिद्ध करना होता है। उसे अपनापन भुलाने का यत्न उसकी हत्या का ही यत्न है।

कुछ ऐसी भी परीस्थितियाँ होती हैं, जब समाज आत्महत्या कर लेता है। पहली परिस्थिति है, उसकी जीवित रहने की आशा समाप्त कर देना। आज हमारे चारों ओर समाज में जो निराशा का वातावरण छाया हुआ है उसका मुख्य कारण है, समाज उन चेष्टाओं का अपनी इच्छानुसार फल चाहता है जो देशकाल में किया करता है। पर यह आवश्यक नहीं कि हमारे कर्मों का हम चाहें वैसा ही फल मिले। जो फलासक्ति रहित नहीं होता वह समाज बहुत थोड़े ही समय बाद निराश हो जाता है। पहले ही वह आशा की इतनी ऊँची उड़ान भर लेता है, कि उसकी चेष्टा उसके अनुकुल नहीं होती। फलतः थोड़े से त्याग का बहुत बड़ा फल चाहने लगता है और जब ऐसा नहीं होता, तब वह कर्म का ही अविश्वास करने लगता है। कर्म में अविश्वास होना ही समाज की जीवनी शक्ति का कुंठित होना है।

समाज अपनी आत्महत्या एक अन्य प्रकार से भी करता है। सामाजिक चेतना को जागृत करने वालों पर यह भी उत्तरदायित्व है, कि वे समाज के समक्ष ऐसा लक्ष्य उपस्थित करें जिस दिशा में वह अपनी चेष्टा लगा सके। हमारी सामाजिक जागृति निश्चित लक्ष्य के अभाव में बहुविध लक्ष्यों की ओर बट जाती है। बहुत बार ऐसी चौमुखी किंकर्तव्यमूढ़ता में उसे लक्ष्य ही नहीं दिखाई देता। जागृत होने वाली रजोगुणीय प्रवृत्ति के सामने लक्ष्य का न दिखाई देना एक खतरनाक बात है। अग्नि सबको जलाने का काम कर लेती है, पर जब उसे जलाने के लिये कोई वस्तु नहीं मिलती जब वह खुद को ही जलाकर भस्म कर देती है। सामाजिक शक्ति जागृत हो और उसे बढ़ने को दिशा का ज्ञान न हो तो वह खुद कुछ निरुद्देश्य उछलकूद करने के बाद निराश होकर अपने आपको नष्ट करने का कारण बनती है।

लक्ष्य की दिशा का निश्चय होने पर उसके लिये आवश्यक है, कि एक सुनिश्चित मार्ग भी हो। लक्ष्य शाश्वत होना चाहिये पर मार्ग देशकाल परीस्थिति के अनुरूप होना चाहिये। यदि लक्ष्य शाश्वत न होगा, तो उसे कुछ ही समय में पूरा कर लिया जायेगा और उसके बाद भटकना अवश्यंभावी होगा। समाज के लिए 100-50 वर्ष बहुत बड़ा समय नहीं है। मनुष्य की आयु सीमित है पर समाज की आयु शाश्वत होती है। वह समाज के सहारे ही सीमित जीवन में असीम लक्ष्य की उपासना कर सकता है।

मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है। इसे कोई माने या नहीं, सभी को वहीं जाना पड़ता है, जहाँ से वह आया है। हमारे देह के नष्ट होने पर उसमें जो कुछ जड़ तत्व हैं, वे वापिस अपने-अपने जड़ तत्वों में विलीन हो जाते हैं। हमारे देह में पृथ्वी तत्व पृथ्वी में लीन हो जाएगा। हमारे भीतर का आकाश महाकाश में लीन हो जाएगा। लेकिन हमारे भीतर का परम चेतन तत्व वापिस परम तत्व की ओर ही जाता है। किन्तु ऐसा एक ही जन्म में सम्भव नहीं। आत्मा ईश्वर प्राप्ति से पहले अनेक देह धारण करता है और उसी उदेश्य से वह ईश्वर तक अन्ततोगत्वा पहुँचता है। प्रलय के समय कोई भी तत्व नष्ट नहीं होता बल्कि परम तत्व में मिल जाता है।

ईश्वर प्राप्ति का उपाय प्रति जन्म में भिन्न-भिन्न

होता है। धर्म उन भिन्न-भिन्न उपायों का हमारे लिये निर्देश करता है। किन्तु समय-समय पर धर्म के विश्लेषण में दोष होते आये हैं, क्योंकि धर्म की व्याख्या करने वालों ने प्रायः उसे काल्पनिक बना डालने की चेष्टा की है, जबकि धर्म का सम्बन्ध हमारे आचरण और व्यवहार से ही है।

धर्म की इस सीमित और संकुचित यात्रा में अनेक बार क्रान्तियाँ हुई हैं। महाराज जनक ने पहली क्रान्ति की। उन्होंने धर्म की प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध एक नया रास्ता बताया। उन्होंने कहा, ईश्वर प्राप्ति के लिये जंगलों में जाने की आवश्यकता नहीं वे अपने दैहिक कर्तव्यों का पालन करते हुए उनसे ऊपर उठकर ईश्वरोपासना कर सकते हैं। स्वयं जनक ने इसका उद्धार प्रस्तुत किया । लोगों ने उसे विदेह की उपाधि से सम्मानित किया लेकिन हजारों वर्ष बाद इस विचारधारा पर अव्यावहारिक सिद्धान्तों ने फिर प्रभाव डाल दिया। द्वापर में यही वेदान्त की शिक्षा श्रीकृष्ण ने पुनः अर्जुन को दी। उन्होंने वेदान्त मार्ग को प्रशस्त करते हुए बताया कि यदि कोई व्यक्ति स्वधर्म का पालन करे, तो केवल इसी से ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव है। गीता का यह उपदेश आज भी सर्वमान्य है।

सीधे शब्दों में यह कहा जाय, कि समाज अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार फल आसक्ति रहित होकर कर्म करे, तो इसी से लोक और परलोक दोनों के उद्देश्य सिद्ध होते हैं। सामाजिक शक्ति को जागृत करने के समय उसके सामने स्वधर्म पालन से बढ़कर और कोई शाश्वत लक्ष्य नहीं हो सकता। समाज को अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के मार्ग पर आरूढ़ करना, न केवल समाज की सेवा है, बल्कि वह राष्ट्र और समूची मानवता की सेवा है।

लक्ष्य के बाद बारी आती है, प्रणाली की। ऊपर कुछ चर्चा इस विषय में हो चुकी है। पद्धति वह नहीं रह सकती जो पुराने जमाने में थी। क्षात्रधर्म का पालन करने वाले आज तलवार लिए हर समय नहीं घूम सकते। वैसे तलवार और उसे धारण करने का अपना महत्व है परन्तु जनसमुदाय को सही रास्ते पर ले आने के लिये प्रथम संस्कारों को जगाना होगा। छोटे-छोटे कार्यों से हमें महान गुण सीखने का अभ्यास करना होता है।

समाज की बुरी हालत का इतिहासज्ञ सकारण वर्णन कर सकता है। वह देशकाल परिस्थिति पर दोषारोपण कर सकता है और उसका यह भी कहना हो सकता है कि बिना देशकाल की उन परिस्थितियों को बदले समाज में सुधार हो ही नहीं सकता। परन्तु महापुरुषों की और संत पुरुषों की परंपरा इससे भिन्न होती है। वे लोग सृष्टि और समाज के ह्रास का कारण अपने भीतर ढूंढने का प्रयास करते हैं। बाहर की बुराई के बीज हमारे भीतर नहीं हों। साधक की परम्परा भी संत की परम्परा है। वह समाज को अपना आराध्य मानता है। समाज की सेवा वह दया की भावना से नहीं करता, बल्कि इसलिए करता है कि समाज शक्तिस्वरूप है, समाज उसका उपास्य है इसीलिए उसकी सेवा कृतज्ञता से ही करता है। ऐसा करने पर न तो साधक में अहंकार आता है और न वह समाज पर अपना एहसान मानता है।

आजकल समाज जागरण की पद्धति बहिर्मुखी है। लोग यह मानते हैं, कि किसी प्रदर्शन विशेष में उपस्थिति अच्छी हो जाय, अथवा समाज के लोग एक विशेष प्रकार की वेशभूषा और बोली बोलते हों, तो उनमें जागृति आ ही जाती है। सच तो यह है कि हर सामाजिक क्रान्ति का मूल अन्तःकरण में है। विचार क्रान्ति के बिना कोई भी सामाजिक क्रान्ति सम्भव नहीं है। बाहर के परिवर्तन, छुटपुट समाज-सुधार, भीतरी परिवर्तन के अनिवार्य परिणाम हैं, किन्तु बाह्य स्वरूप के परिवर्तन से भीतरी परिवर्तन आजाय यह आवश्यक नहीं। पिछले पचास वर्षों में हमने समाज के बाह्य स्वरूप में परिवर्तन लाने की जितनी चेष्टा की है, उतनी भीतरी परिवर्तन के लिये नहीं की और परिणाम हमारे सामने हैं। हम जैसे पहले थे उससे कुछ भी आगे नहीं हैं।

कुछ लोग समय का बहुत बड़ा रोना रोते हैं। किसी कार्य विशेष का समय नहीं है। समय की सच्ची माँग आवश्यक नहीं कि जमाने की दिशा के अनुकूल ही हो। एक समय जब हिरण्यकश्यप का राज्य था उस समय जमाने का प्रवाह यही था, कि हिरण्यकश्यप का विरोध नहीं किया जाये। परन्तु समय की माँग उस समय प्रहलाद ने ही पूरी की थी। रावण के समय में जमाना रावण की ओर था पर समय चाहता था कि कोई ऐसा व्यक्ति आये जो इस दुष्ट आततायी का विनाश कर सके। पर उस जमाने में ऐसी क्षमता नहीं थी। जमाना उन आतताइयों के आगे झुक चुका था। उस समय, समय की माँग को पूरा करने के लिये भगवान को अवतार लेना पड़ा। सत्य और समय की माँग सदैव एक हुआ करती है। जो सत्य से पिछड़ जाय वह किसी जमाने की माँग नहीं। अब प्रश्न रहता है जमाने का। जमाना बदलता है, उसे बदलने वाले महापुरुष कहलाते हैं। समय के आगे जमाने को झुकना पड़ता है। सहज अर्थों में जमाना एक निर्जीव ठेलागाड़ी है, जो प्रवृत्तियों द्वारा इधर-उधर खींची जाती है। कभी सतोगुणी प्रवृत्ति बढ़ने लगी तो जमाने का रुख सतोमुखी हो गया और कभी तमोगुणीय चेष्टायें बढ़ने लगी तो सारा जमाना तमोभाव की ओर जाने लगता है।

स्वधर्म पालन करना समय की माँग है, सत्य की मांग है। स्वधर्म पालन करने के अभिप्राय अपने उत्तरदायित्व को निभाना व हमारे गुण और स्वभाव के अनुकूल कर्मों को फलासक्ति रहित होकर करना है। यह किसी देशकाल में बुरा नहीं है। जो लोग धर्म के विषय में हल्ला मचाते हैं, वे धर्म के मर्म को नहीं जानते। धर्म आचरण का मूल है और आचरण के सुधार में ही समाज के सुधार की बुनियाद है। कहीं सुधार का कार्य सहयोगी और सामुहिक आधार पर किया जाय तो इससे भिन्न कोई समाज जागरण मेरी नजरों में नहीं है।

आइये, हम थोड़ा गहराई से विचार कर लें। इस लोक के लिये और परलोक के लिये अपने उत्तरदायित्वों को निभाने की शिक्षा से बढ़कर कोई शिक्षा नहीं है। हमारे गुणों को विकसित करने आ अर्थ ही समाज के गुणों को जागृत करना है। हमारी विशिष्टतायें जागृत करना ही सामाजिक विशेषताओं को जागृत करना है। जब सामाजिक विशेषतायें जागृत होंगी तो समाज की संजीवनी शक्ति फिर प्रवाहित हो उठेगी। ज्योंही वह क्रियाशील हो, उसके सामने स्वधर्म पालन का लक्ष्य हो और देशकाल के अनुकूल प्रणाली हो, तो यही समाज जागृति का मार्ग, यही राष्ट्र जागृति का मार्ग है। इन्हीं जागृतियों से भिन्न कोई परमेश्वर की जागृति भी नहीं है। अतः चलिये हम सब मिलकर आत्मजागृति की ओर बढ़ें। ●

जब परमेश्वर मनुष्य के लात मारता है, मनुष्य यह नहीं जानता कि यह भी उनकी कृपा का एक विलक्षण उपकरण हैं, क्योंकि हम लात के आघात से ही तिलमिला जाते हैं। हमारी अटूट श्रद्धा की विपुलता ही कह सकती है कि हजार लातों को सहकर भी उसके चरणों का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उसकी शरण ही सभी प्रकार के आघातों का एकमात्र अन्तिम निराकरण है।

– पूज्य तनसिंह जी की डायरी से

महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें

– जयदयाल जी गोयन्दका

दुखी आदमियों में विशेष रूप से भगवान् रहते हैं, उनकी सेवा करना भगवान् की सच्ची सेवा करना है। आतुर की सेवा करने से भगवान् नारायण शीघ्र प्रकट होते हैं। अतिथि रूप में नारायण की सेवा करे, नारायण हमारी परीक्षा लेने के लिये लीला कर रहे हैं। जो उत्तीर्ण हो गया उसका बेड़ा पार है। भगवान् ऐसी परिस्थिति पैदा करते हैं कि देखें इसके हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

मेरे मनमें यह बात आयी कि सबसे बढ़कर है प्रभु से प्रेम करना, इससे बढ़कर कोई बात मेरी समझ में नहीं आती। प्रभु से प्रेम कैसे हो? यह उत्तर मिलता है कि प्रेम किसी से भी करना हो तो सेवा करने से, अनुकूल बनने से प्रेम होता है। अनुकूल में सबका प्रेम होता है। मन के अनुकूल में प्रेम एवं प्रतिकूल में द्वेष होता है। प्रभु के हम तभी अनुकूल बन सकते हैं जब प्रेम हो। अब प्रश्न उठता है प्रेम कैसे करें? क्या उपाय है? उपाय यह है कि सब प्रभु का ही स्वरूप है–

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

(गीता 10/20)

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

यह भी कहा है–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18/46)

जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

जिस परमात्मा से सारा संसार प्रकट हुआ है, जिससे यह संसार व्याप्त है उसकी सेवा-पूजा करे। पूजा करना क्या है? आधे श्लोक में विधि बतलायी है कि सबकी पूजा, सत्कार और सेवा करे, आधे श्लोक में भगवान् का तत्त्व बतलाया है।

ईशावास्योपनिषद् में कहा है–**'ईशावास्यमिदं सर्वं'** समस्त संसार ईश्वर से व्याप्त है। कहने का अभिप्राय वह परमात्मा जो सारे संसार को उत्पन्न करने वाला है, उसकी सेवा करे, सबके अनुकूल बन जाय, अनुकूल बनना ही सेवा है।

सार बात यह है कि जितने प्रेमी हैं, घरवाले हैं, उन पर कोई संकट का काम प्राप्त हो वहाँ सब के हितके लिये अपना नम्बर पहला रखे। अपनी बलि देने से सबका हित हो जाय तो तैयार हो जाय। यदि एक मोहल्ला, कुटुम्ब भी बच जाय तो भी अपनी बलि देने के लिये तैयार हो जाय। यदि एक व्यक्ति के लिये भी आवश्यकता पड़े तो उसके लिये अपने प्राण त्याग के लिये तैयार रहे, यह बड़ा उत्तम भाव है। किसी विदेश की बात है वहाँ सरकार ने सूचना प्रकाशित की कि देश की रक्षा के लिये जो प्राण देने को तैयार हो, वह आये। आवश्यकता से अधिक व्यक्ति आ गये। एक लड़के ने पत्र लिखकर भेजा कि मेरे घरमें बूढ़ी माता है उसकी सेवा के लिये मुझे बाध्य होकर रहना पड़ता है। उसकी माता को पता लगने पर वह अपने शरीर को किरासीन तेल से भिगोकर जल गयी और पहले ही एक पत्र लिखकर रख गयी कि देश की रक्षा के लिये मैं आत्महत्या कर रही हूँ, मेरे मर जाने से मेरा लड़का देश की रक्षा कर सकेगा। देश की रक्षा के लिये कितना उत्तम भाव है।

हमारे लिये सारा देश अपना है, सबकी रक्षा हो यही भाव रखना चाहिये। न देश का अभिमान, न जाति का अभिमान रहे। मनुष्य में बहुत प्रकार के अभिमान रहते हैं। हम लोगों में कितने प्रकार के अभिमान हैं? वर्ण, विद्या, कुटुम्ब, देश, जातिका अभिमान है। इसी प्रकार अन्य किसी

भी प्रकार का अभिमान है वह पतन करने वाला है। सभी प्रकार के अभिमान का त्याग करे। ज्ञान के सिद्धान्त से सब हमारी आत्मा हैं, भक्ति के सिद्धान्त से सब हमारे पूज्य हैं। भगवान् कहते हैं–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

(गीता 6/30)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

(गीता 6/32)

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

भक्ति के सिद्धान्त में दो मत हैं–एक तो सबको अपना इष्ट समझना, दूसरा सबको बन्धु समझना। कहा गया है–

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दन।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।

दूसरी बात यह है–

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

तीन बातें हैं–या तो सबको आत्मा समझकर सेवा करे, या सबको परस्पर भाई समझकर सेवा करे, या सबको नारायण समझकर सेवा करे, तीनों ही उत्तम हैं। सर्वसाधारण के लिये भक्ति की बात सुगम है। भक्ति में दो बातें आती हैं–सब हमारे भाई हैं, इसकी अपेक्षा सब परमेश्वर हैं– यह सिद्धान्त ऊँचा है। ईसाइयों में इस बात का ज्यादा प्रचार है कि सब हमारे भाई हैं, ज्ञान के सिद्धान्त से सब आत्मा हैं।

जिसको हम अपना भाई समझते हैं आपत्ति पड़ने पर उसका भी त्याग कर देते हैं, किन्तु आत्मा का अनिष्ट नहीं चाहते। भाई से बढ़कर अपने आपसे प्रेम है। जैसी सेवा अपनी बनती है वैसी सेवा सहोदर भाई की भी नहीं बनती। इससे सिद्ध हुआ कि सबको भाई समझने की अपेक्षा सबको अपनी आत्मा समझना ऊँचा सिद्धान्त है। इससे भी ऊँची बात है सबको अपना इष्टदेव समझे, यह उत्तम भक्ति है। इष्ट के लिये मनुष्य अपने आपको भी अर्पण कर देता है, इष्ट के प्रति जितनी सेवा बन सकती है उतनी किसी के लिये नहीं बन सकती। उसमें प्रतिकूल बुद्धि होती ही नहीं, प्रतिकूल हो जाय तो इष्ट नहीं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि भाई से भी बढ़कर अपने आपसे प्रेम है, उससे भी बढ़कर अपना इष्ट प्रिय है, यदि इष्ट प्रिय नहीं है तो इष्ट-बुद्धि नहीं है।

मनुष्य अपने प्राणों से भी बढ़कर जब अपने प्रियतम को समझता है, तभी वे प्रकट हो जाते हैं। इस बात को समझाने के लिये यह श्लोक है–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

सब बात इसमें नहीं आयी, एक अंश मात्र आयी है, अन्त में यही कहा कि आप सर्वस्व हैं।

इससे यह बात हुई कि सबसे बढ़कर भगवान् में प्रेम करना है। सबकी सेवा ही भगवान् की सेवा है।

यावन्मात्र को अपना इष्टदेव मानकर उनकी सेवा ही परम सेवा है। कैसा भाव होना चाहिये? जैसा नामदेव जी का था। कुत्ता रोटी लेकर भागा, नामदेव जी घी का कटोरा लेकर पीछे दौड़े, बोले महाराज! रोटी लूखी है, घी चुपड़वा लो, कुत्ते के रूप में भगवान् प्रकट हो गये। कैसा उत्तम भाव है? गीता में भगवान् ने कहा है–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझ को सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

यदि यह बात समझ में आ जाय तो अभी दर्शन हो जाय। यज्ञ-तपों के भोक्ता भगवान् हैं। कैसे? भगवान् ही देव, मनुष्य, ऋषि, पशु के रूपमें हमारे द्वारा दी हुई वस्तुओं को ग्रहण करते हैं। हम जो यज्ञ, दान, तप करते हैं उसके भगवान् ही भोक्ता हैं। कुत्ते को, कौओं को रोटी देते हैं, भगवान् ही कुत्ते और कौओं के रूप में रोटी ले रहे हैं।

इस श्लोक में तीन बातें बतायी गयी हैं। इनमें से एक को जानने वाला भी प्रभु को प्राप्त हो सकता है। तीनों को जानने वाला हो जाय, फिर तो बात ही क्या है?

यदि आप कहें कि हम भगवान् को ऐसा समझ गये, किन्तु शान्ति नहीं मिली। आपके घरपर अतिथि आये, उनको भोजन कराते हुए क्या आप ऐसा समझते हैं कि भगवान् को भोजन कराते हैं, यदि नहीं तब तो आपने उपरोक्त श्लोक का रहस्य समझा ही नहीं।

नामदेव जी कुत्ते को भी नारायण समझते थे, उनके घर में आग लग गयी, आधा माल जल गया, वे प्रार्थना करने लगे- हे प्रभु! आपने आधे का ही भोग लगाया। आधे ने क्या अपराध किया है। बचा हुआ भी उसमें डाल दिया, वे आग में भगवान् को देखते थे। अब भगवान् उनसे कैसे छिपें। जैसे प्रह्लाद से नहीं छिप सके। हिरण्यकशिपु ने उनसे पूछा क्या खम्भे में भी तुम्हारा भगवान् है? उन्होंने कहा हाँ। हिरण्यकशिपु ने खम्भे पर मुक्का मारा, खम्भ फाड़कर भगवान् निकले और हिरण्यकशिपु को चीर डाला। प्रह्लाद को विश्वास था कि खम्भे में भी भगवान् हैं। प्रह्लाद को अग्नि में डाल दिया, वे नहीं जले। पूछने पर कहा कि यह मुझे कैसे जलाये मैं तो प्रभु की गोद में बैठा हूँ। उसके ध्यान में था कि अग्नि साक्षात् नारायण हैं तो नारायण कैसे जलायें।

हम किसी की सेवा करते भी हैं तो ऐसा भाव नहीं होता कि हम भगवान् की ही सेवा कर रहे हैं, श्रद्धा की कमी है इसीलिये भगवान् प्रकट नहीं होते। पशु-पक्षी किसी की भी सेवा करे; भगवान् समझकर करे। जो आनन्द भगवान् के दर्शन से हो, वही आनन्द उनके दर्शन से होना चाहिये। भगवान् के मिलने में हमें विलम्ब हो रहा है, इसमें हमारी बेसमझी ही है, इसके लिये हमें कुछ करना नहीं पड़ता।

किसी के यहाँ अतिथि आ गये। एक तो ऐसा है भोजन कराता ही नहीं, दूसरा आदर से नहीं कराता दो बातें सुनाकर कराता है, तीसरा है उसने कहा- आप आ गये बड़ी अच्छी बात है। प्रेम-शान्ति से भोजन कराया। चौथा है उसने कहा- ये तो साक्षात् भगवान् ही आ गये, इनकी सेवा करके लाभ उठाओ, सेवा करने लगा। पाँचवाँ है देखकर ही मुग्ध हो गया, स्तुति करने लगा-

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

(गीता 2/7)

इसलिये कायरता रूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।

(गीता 10/12)

आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं।

आपने बड़ी दया की, उसने कहा भगवान् ही आये हैं, आपने अपने रूप को क्यों छिपा रखा है?

सब समय यह भाव हो तो भगवान् रुक नहीं सकते। खर्च, परिश्रम तो पाँचों में समान है फल में महान् अन्तर है। केवल भाव का अन्तर है। भावसे कितना अन्तर पड़ जाता है। सब समय यह भाव हो तो भगवान् रुक नहीं सकते।

पहला प्रकरण था कि प्रेम कैसे हो ? प्रेम सेवा करनेसे हो सकता है। सभी परमेश्वर हैं, सब में परमेश्वर हैं, ऐसा समझकर प्रेम करे, सेवा करे। भारी से भारी संकट आकर प्राप्त हो तो पहले अपना नम्बर रखे। ऐसे महान् पुरुष हमारे यहाँ हो गये हैं। महाराजा दिलीप की कथा प्रसिद्ध ही है। वे वशिष्ठजी के पास गये। उन्हें वशिष्ठजी ने नन्दिनी गौ

की सेवा करने के लिये कहा, वे सेवा करने लगे। गौ ने एक दिन राजा की परीक्षा ली। वन में शेर आया और नन्दिनी पर आक्रमण किया। राजा ने बाण चलाना चाहा; किन्तु हाथ स्तंभित हो गये, राजा हार गये। राजा ने कहा गौ को मत मारिये, छोड़ दीजिये बदले में मुझे खा लीजिये। शेर ने कहा यह तो पशु है, तुम मनुष्य हो, बुद्धिमान् हो, विचार कर देख लो, तुम्हारे बचने से बहुत लाभ है। राजा ने कहा मैंने विचार कर लिया है, यदि मेरे प्राण जाकर भी इसके प्राण बच गये तो मेरे धर्म का पालन हो गया। मैं अपना धर्म पालन करना प्राणों से भी बढ़कर समझता हूँ। ऐसा कहकर अपने आपको सिंह के समर्पण करके वे ध्यान में मग्न हो गये, देखा वहाँ सिंह नहीं है, गाय ही थी। गाय ने कहा- मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी, जाओ तुम्हें पुत्र की इच्छा थी, तुम्हारे पुत्र होगा। यदि वही राजा निष्कामभाव से सेवा करता तो भगवान् की प्राप्ति हो जाती।

जो भगवान् के लिये अपने आपको अर्पण कर देता है, भगवान् उससे छिप नहीं सकते। किसी पर भी आपत्ति आ जाय तो अपने आपको न्योछावर कर दे। यदि भगवान् ही आकर घोषणा करें कि सब व्यक्तियों में किसको दर्शन दें तो कहना चाहिये कि मुझे छोड़कर सबको दर्शन दे दीजिये। यदि उत्तम चीज आकर प्राप्त हो तो सबसे पीछे अपना नम्बर रखे।

जो बलिदान के लिये सबसे पहले अपना नम्बर तथा उत्तम वस्तु के लिये अपने साथी का नम्बर पहले रखता है वही पुरुष श्रेष्ठ है।

एक कथा है-एक आदमी वैकुण्ठ जाने लगा। मार्ग में स्थान विशेष नरक आ गया। उसके वहाँ पहुँचने पर लोग चिल्लाने लगे आप यहीं ठहर जाइये। यह कुंभीपाक नरक है इसमें हम पापी जीवों को पकाया जाता है आपके आनेसे यहाँ की अग्नि शान्त हो गयी है, हम लोगों को शान्ति प्राप्त हो गयी है, हम लोग जो काटे जा रहे थे तलवार की धार कुन्द हो गयी है, आपसे स्पर्श की हुई वायु लगने से हमें सुख मिल रहा है।

उसने कहा मेरे रहने से इतने लोगों को सुख मिलता है, अतः अब मैं यहीं रहूँगा, वैकुण्ठ में क्या करूँगा। पार्षदों ने कहा चलिये, उसने कहा मैं तो यहीं रहूँगा, यदि इन लोगों के लिये भी आपके यहाँ स्थान हो तो मैं भी चल सकता हूँ। भगवान् को सूचना दी गयी, भगवान् ने कहा सबको ले आओ। सबकी मुक्ति हो गयी।

युधिष्ठिर की कथा आती है इन्द्र रथ लेकर आये, उन्होंने देखा कि एक कुत्ता उनके साथ आ रहा है। इन्द्र ने कहा कुत्ता साथ में नहीं जा सकता है, कुत्ते को पालने वाला नरक में जाता है। युधिष्ठिर ने कहा ठीक है यह मेरे साथ यहाँ तक आ गया है, अब इसको हिमालय में छोड़ जाऊँ तो कितना पाप है। मैं इसे छोड़कर नहीं जाना चाहता, यदि यह नहीं जा सकता तो मुझे भी यहीं आनन्द है। एक कुत्ते के लिये स्वर्ग को लात मार देते हैं।

महाभारत की कथा है राजा युधिष्ठिर के अश्वमेघ यज्ञ की प्रशंसा हो रही है। एक नेवला बिलसे प्रकट हुआ कहा, झूठी प्रशंसा क्यों करते हो। इस यज्ञसे भी बढ़कर मैंने यज्ञ देखा है। एक ब्राह्मण था, शिलोञ्छ-वृत्तिसे जीवन निर्वाह करता था। कई दिनों तक अन्न नहीं मिला। सात दिन के बाद अन्न मिलने पर रोटी बनायी एवं उसके चार भाग किये। उनका नियम था भोजन के समय कोई अतिथि मिल जाय तो उसे भोजन कराकर भोजन करते थे। बाहर आकर देखा एक ब्राह्मण है। उससे पूछा भोजन करेंगे, ब्राह्मण तैयार हो गया। अपना एक हिस्सा उसे दे दिया, ब्राह्मण देवता के तृप्ति नहीं हुई, स्त्री ने कहा मेरे हिस्से का भी इन्हें दे दीजिये, वह देने के बाद भी क्षुधा नहीं मिटी, फिर पुत्र ने कहा मेरा भोजन भी इन्हें दे दें, आग्रह देखकर उसका हिस्सा भी दे दिया। पुत्रवधू ने भी अपना हिस्सा ब्राह्मण को दिला दिया। आखिर चारों का भोजन एक ही ब्राह्मण को दे दिया, अब ब्राह्मण ने कहा कि मेरी तृप्ति हो गयी।

वे तो साक्षात् धर्मराज ही थे, प्रकट हो गये, कहा मैं आपकी परीक्षा के लिये आया था, आप ही धर्म का पालन करने वाले हैं, मेरे आसन पर आप ही बैठने के योग्य हैं, मैं अधिकारी नहीं हूँ।

नेवले ने कहा ब्राह्मण ने जहाँ हाथ धोये थे, उस कीचड़ में लोटने से मेरा आधा शरीर स्वर्ण का हो गया, यहाँ लोटने पर उलटा कीचड़ लग गया है। दूसरों की सेवा करने के बाद यदि अन्न बचे तो खा ले, वही यज्ञशिष्ट है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

(गीता 3/13)

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

सब उदाहरणों से दो बात मिली, बलिदान के काम में सबसे पहले स्वयं रहे, अपने लाभ के काम में सबसे पीछे रहे, इससे भगवान् शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। महाभारत-आदि पर्व की कथा है-

महाराज युधिष्ठिर एक नगरी में रहते थे, वहाँ बकासुर नाम का एक राक्षस रहता था। उसकी शर्त थी कि मुझे प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा एक मनुष्य भोजन के लिये देना होगा, अन्यथा मैं सारे नगर को खा जाऊँगा। वहाँ के राजा ने प्रत्येक परिवार की पारी बाँध रखी थी, बारह वर्ष बाद एक घर की पारी आती थी। पाण्डव जिस ब्राह्मण के यहाँ ठहरे थे, उसकी पारी थी। उनके परिवार में पति, पत्नी एक पुत्र एवं पुत्री थे। वे लोग आपस में चर्चा कर रहे थे कि कल राक्षसके पास मैं जाऊँगा, यही विचार-विमर्श चल रहा था। यह बात कुन्ती ने सुन ली। कुन्ती ने कहा कि मेरे पाँच लड़के हैं, उनमें से एक को भेज दूँगी। इतने में भीमसेन आ गये, कुन्ती ने कहा कि ब्राह्मण की रक्षा के लिये तुमको भेज रही हूँ। भीमसेन प्रसन्न हो गये। उनके भाइयों को मालूम होने पर युधिष्ठिर ने कहा-इसके बल पर तो हम राज्य लेना चाहते हैं, हम चारों में से किसी एक को भेज दीजिये। कुन्ती ने कहा इसके लिये तो भीम ही ठीक है। वह राक्षस को मारकर आ जायगा एवं ब्राह्मण की भी रक्षा हो जायगी, मुझे यह विश्वास है। युधिष्ठिर ने कहा आपकी इच्छा। भीम को भेज दिया गया। भीमसेन भूखे थे जो ले गये थे खाने लगे। जो कुछ पाण्डव इकट्ठा करते थे, आधा भीम खाते थे आधे में बाकी लोग भोजन करते थे, किन्तु उनका पेट नहीं भर पाता था। उनके भोजन करते समय ही राक्षस आ गया। राक्षस ने आकर उनकी पीठ में मुक्का मारा, किन्तु वे खाते ही रहे। आनन्द से भोजन करके हाथ धोये। राक्षस ने कहा मेरे लिये भोजन आया उसे तूने खा लिया। भीमसेन ने कहा कि अभी तक तुमने अनर्थ किया है, उसका बदला मैं आज लूँगा। उसकी चोटी पकड़कर, घुमाकर एवं घसीटकर मार डाला तथा नगर के द्वार पर गिरा दिया, फिर ब्राह्मणके घर चले गये। प्रातःकाल सब लोगों ने देखा राक्षस मरा पड़ा है। यहाँ इतना ही सार लेना है कि उस माताको धन्यवाद देना चाहिये कि दूसरों की रक्षाके लिये अपने पुत्र को राक्षस के पास भेज दिया।

अपने तो यह बात लेनी है कि वह ब्राह्मण तो स्वयं जाने को कहता है, स्त्री, बच्चे स्वयं जाने के लिये कहते हैं। कुन्ती अपने पुत्र को भेजती है। ऐसे लोगों को भगवान् नहीं मिलेंगे तो किसको मिलेंगे। भारी से भारी कष्ट का काम पड़े तो पहले अपना नम्बर रखे, भोग का काम पड़े तो दूसरों को दे दे। यह भगवान् में प्रेम बढ़ाने का उपाय है। इसका फल अनन्य प्रेम होता है। दूसरी बात थी सर्वलोक महेश्वर। यह मानने से कल्याण कैसे हो सकता है? जो उनको महान् ईश्वर जानता है वह उनको ही भजता है।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।

(गीता 15/19)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है।

उदाहरण-एक राजा थे उनके तपेदिक हो गया, एक वैद्य आया उसने उनका इलाज कर दिया, उनका रोग ठीक हो गया। राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि हमारे राज्य में जो

(शेष पृष्ठ 20 पर)

संत शिरोमणी सती माता रूपकंवर जी (बाला सती)

– भंवरसिंह मांडासी

रावणिया राजस्थान के जोधुपर जिले की बिलाड़ा तहसील में स्थित एक छोटा-सा गाँव है। वर्तमान में इस गाँव का नाम इस गाँव की ही सुपुत्री बाला सती माता रूपकंवरजी के सम्मान में 'रूपनगर' रख दिया गया है। रूपनगर पहुँचने के लिए जोधपुर से अजमेर जयपुर जाने वाली मुख्य सड़क पर चलें तो बिलाड़ा से लगभग 7 कि.मी. पहले एक सड़क मुड़ती है, जो खेजड़ला जाती है तथा खेजड़ला से एक पक्की सड़क रूपनगर को जाती है। मुख्य सड़क से खेजड़ला की दूरी 13 कि.मी. है तथा खेजड़ला से रूपनगर की दूरी 8 कि.मी. है।

रूपनगर में करीबन 400 घरों की बस्ती होगी जिसमें विभिन्न समुदाय एवं जातियों के लोग निवास करते हैं। रियासत काल में 'रावणिया' जोधपुर रियासत का एक खालसा गाँव था जिसकी जागीर बाद में जोधपुर महाराजा ने एक शेखावत सरदार व तीन कूंपावत सरदारें को प्रदान कर दी थी। प्रत्येक सरदार को गाँव की एक चौथाई जागीर बंटवारे में मिली थी।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक घटना हुई थी जिसका प्रसंग इस प्रकार है :- एक बार जालोर किले पर शत्रु का घेरा पड़ा था। उस समय जालोर दुर्ग के रक्षकों में घाटवा गाँव के निवासी श्री मदनसिंह शेखावत भी सम्मिलित थे। घाटवा गाँव दांतारामगढ़ के पास है तथा नागोर जिले में आता है। श्री मदनसिंह शेखावत जालोर किले की रक्षा के लिए अदम्य साहस और वीरता के साथ भयंकर युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी असाधारण वीरता, बलिदान व सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें व तीन कूंपावत सरदारों को जिन्होंने उनके समान ही वीरता का परिचय दिया था, सभी को दरबार द्वारा सम्मिलित रूप से रावणिया गाँव की जागीर प्रदान की गई। तत्पश्चात् मदनसिंह के सुपुत्र श्री बहादुरसिंह जी अपने परिवार सहित राविणया पधारे व वहीं बस गए।

श्री मदनसिंह का वंश वृक्ष इस प्रकार है –

श्री मदनसिंह
↓
श्री बहादुरसिंह
↓
श्री सुलतानसिंह → श्री चन्दरसिंह (भाबोसा) → शायर कंवर बाईसा, रूपकंवरजी (सतीजी बापजी)

श्री बैरीसालसिंह → श्री लालसिंह → श्री सांवलसिंहजी, श्री रसालसिंह जी, श्री विजयसिंहजी

राजपूत सती साध्वियों में बाला सतीजी का नाम जनमानस में बड़ी श्रद्धा व आदर के साथ लिया जाता है। निरन्तर 43 वर्षों तक निराहार रहकर सतीजी ने प्रभु की वन्दना की तथा अपनी तपस्या के बल से सिद्धियाँ प्राप्त कर कितने ही पीड़ितों की नैया पार की। सम्भवत: इस प्रकार की सती साध्वी विश्व में आज के कलियुग में मिलना दुर्लभ है। आध्यात्म के क्षेत्र में सूक्ष्म शरीर में रमण करने वाली बाला सतीजी के नाम से विख्यात सती रूपकंवर शेखावाटी के संस्थापक राव शेखा के वंश में उत्पन्न राजा रायसल दरबारी के पुत्र लाडाजी (लालसिंह) की वंशज थी।

कुछ समय पूर्व एक लाडाणी (लाडखानी) शेखावत परिवार शेखावाटी क्षेत्र के गाँव घाटवा से रावणिया जाकर बस गया था। वहीं लालसिंह शेखावत की धर्मपत्नी श्रीमती जड़ाव कंवर के गर्भ से जन्माष्टमी सोमवार वि.सं. 1960 तद्नुसार 16 अगस्त, 1903 को रात्रि 12 बजकर 01 मिनट पर सतीजी का जन्म हुआ। बालिका का नाम रूपकंवर रखा गया।

सतीजी के दादोसा ठा. बैरीसालसिंह धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। इन्होंने बालिका को एक गुरु मंत्र दिया-

''शिव कहे सुन पारवती, हरि का नाम बिसारमती।''

दादोसा का सत्संग पाकर रूपकंवर 5-6 वर्ष की आयु में ही समाधिलीन रहने की अभ्यस्त हो गई। तथा नो वर्ष की आयु तक अवधूत ही बनी रही। बाबोसा के समझाने-बुझाने पर वस्त्र धारण किए। बड़ी होने पर उनको रामस्नेही साधु गुलाबदासजी जैसे गुरु मिले। रूपकंवरजी की बड़ी बहन शायर कंवर की शादी बाला गाँव के जुझारसिंह के साथ हुई थी। शायर कंवर का शीघ्र ही निधन हो गया था। अत: दादोसा के आग्रह पर रूपकंवर (सतीजी) की सगाई जुझारसिंह के साथ कर दी गई। बैशाख शुक्ला एकादशी सम्वत् 1976 (10 मई, 1919) को शादी सम्पन्न हुई। परन्तु शादी में ही पति के इतना तेज बुखार हुआ कि 15 दिन बाद ही देहान्त हो गया। रूपकंवर का ध्यान तो प्रभु की ओर ही रहता था। उन्होंने कोई विलाप नहीं किया। मीरां की तरह उनका प्रेम प्रभु की तरफ ही रहा। इसी समय से इन्होंने एक समय भोजन करना शुरू कर दिया था। अब उनका सारा ध्यान भजन-कीर्तन में रहता, धीरे-धीरे उनकी साधना बढ़ती गई। सतीजी के जेठ जालिमसिंह के पुत्र मानसिंह को सतीमाता ने माँ की तरह पाला-पोसा था। 15 फरवरी, 1943 को उनका भी निधन हो गया तब इनके सतीत्व का ज्वार उमड़ आया व इन्होंने पुत्रवत पाले हुए मानसिंह के साथ ही सती होकर इस संसार को छोड़ना चाहा लेकिन परिवार के आदमियों ने शंकर नाम के सुनार से उन पर कम्बल डलवा दिया। वैज्ञानिक जगत माने या न माने पर आध्यात्मिक जगत में ऐसा माना जाता है कि सतीत्व का ज्वार चढ़ने पर किसी भी तरह नीले, काले रंग के छींटे दे दिए जायें या इसी तरह का वस्त्र आदि छुआ दिया जाये तो वह देह अपवित्र हो जाती है और सतीत्व का ज्वार उतर जाता है। सतीजी के साथ उस समय ऐसा ही हुआ और वे सती नहीं हो सकी। शंकर सुनार तो कुछ समय बाद चल बसा।

सतीजी उस समय हनुमान जी के मन्दिर से घर लौट आईं व उसी दिन से अन्न व जल छोड़कर भगवान भरोसे पवनाहार पर ही निर्भर हो गईं। तब से अपने शरीरान्त एक निरंतर 43 वर्ष तक निराहार रहकर साधनारत रही। उन्होंने अपनी साधना के समय ही भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों का भ्रमण भी किया। उनके निराहार रहने से विज्ञान जगत भी चकित था। देश-विदेश के बहुत से डाक्टरों ने इस बात की जाँच भी की कि वे बिना आहार कैसे जीवित रह रही हैं। परन्तु विज्ञान जगत से आध्यात्म जगत ऊँचा माना जाता है। अत: भला डॉक्टरों की वहाँ तक पहुँच कैसे सम्भव हो सकती है। विज्ञान के लिए यह एक चुनौती थी। वे सांसारिक आकर्षण के केन्द्र 'धन' की तरफ कभी आकर्षित नहीं हुई। पैसों को अपने हाथ से कभी छुआ तक नहीं। वर्ष 1981-82 में आई लूणी नदी की बाढ़ में सती माँ के मन्दिर शिव मन्दिर व मकान भी बह गये थे जिसके प्रत्यक्षदर्शी श्री लूणसिंह राजपुरोहित निवासी कल्याणपुरा तह. सरदारशहर, जिला-चूरू आज भी जिन्दा है। श्री लूणसिंह ने लेखक को बताया था कि उस समय बाढ़ सहायता व बचाव दल के लिए सेना तैनात की गई थी उसके ईंचार्ज ले. कर्नल (उस समय, बाद में लैफ्टीनेन्ट जनरल बन गये थे) श्री हनुवन्तसिंह जसोल थे, जो सतीजी के परम भक्त भी थे। उस समय हैलीकॉप्टर लेकर सतीजी के आश्रम पर आये व सतीजी से निवेदन किया कि ''बापजी यहाँ पर बाढ़ का खतरा बहुत ज्यादा है आपको हैलीकॉप्टर से कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देते हैं।'' उन्होंने सतीजी से हाथ जोड़कर बहुत अनुनय-विनय किया क्योंकि उन्हें लग रहा था बाढ़ का बहाव बहुत तेज है व पानी कटाव करता हुआ अभी थोडी देर में ही सब कुछ

तहस-नहस कर देगा व सतीजी का आश्रम बाढ़ के साथ बह जाएगा। परन्तु सतीजी ने यह कहते हुए मना कर दिया कि-''हमें कोई खतरा नहीं है जब तक ऊपर वाला साथ है। मैं मेरे स्थान को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी। आप लोग पधारो, देरी मत करो।''

भारी मन से ले. कर्नल हनुवन्तसिंह को हैलीकॉप्टर लेकर आखिरकार वहाँ से उड़ना पड़ा क्योंकि पानी कटाव करता हुआ आश्रम के बिल्कुल पास ही आ गया था। ईश्वर का चमत्कार देखिये कि आश्रम के कोने पर स्थित शिव मंदिर तक बाढ़ में बह गया था परन्तु सतीजी का मंदिर (जिसमें वे पूजा-अर्चना करती थीं) व उनके आश्रम में थोड़े से भू-भाग का जिसमें वो मौजूद थी उस भयंकर बाढ़ में भी कुछ नहीं बिगड़ा व यथावत सुरक्षित मौजूद रहा।

तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी माँ के आश्रम में पधारे थे। उन्होंने सती माता की शक्ति को न पहचानते हुए उनसे कहा-''डोकरी! तेरे मन्दिर के लिए दस हजार रूपये दे रहा हूँ बोल और क्या चाहिए?'' सती माँ ने कहा-''तेरे पास देने को क्या है? मुझे तो लाखों हाथ वाला दे रहा है। तेरे तो अपने दो हाथ भी नहीं हैं।'' मुख्यमंत्री के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगी।

सतीजी ने अपने जीवन में अनेकों चमत्कार दिखाये। प्यास, निद्रा, मल-मूत्रादि विसर्जन की नैसर्गिक वृत्तियों पर 43 वर्षों तक निरोध रखकर 15 नवम्बर, 1986 को इस असार संसार को छोड़कर पुण्यधाम को प्रस्थान किया। लूणी नदी के किनारे स्थित बालाधाम आज भी करोड़ों भक्तों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। धन्य है ऐसी क्षत्राणी सती माता को। ●

पृष्ठ 17 का शेष

महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें

चीज आपको सबसे बढ़कर अच्छी लगे वह आप ले जा सकें तो ले जायँ। पत्थर की खान, लोहे की खान, ताँबे की खान, कोयले की खान, रुपया, चाँदी, स्वर्ण, हीरा आदि की खानें दिखायी गयीं, एक घंटा का समय दिया। बताइये क्या वह कोयला, लोहा ढोवेगा। वह तो हीरा, जवाहरात ही ढोवेगा, यदि कोयला ढोता है तो मूर्ख है।

इसीलिये भगवान् कहते हैं जो मुझे सबसे बढ़कर समझेगा, वह मुझे ही भजेगा। धन, मकान को नहीं भजेगा। जो मुझे पुरुषोत्तम समझता है वह मुझे ही भजता है। उससे मैं कभी अलग नहीं होता। तीसरी बात -

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझे सम्पूर्ण भूत प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है। जब आप यह जान जायेंगे कि प्रभु हेतु रहित प्रेम करने वाले हैं उनका कोई स्वार्थ नहीं है। भगवान् के समान कोई सुहृद् नहीं है। जो मनुष्य भगवान् को ऐसा जान जाता है वह शान्ति को प्राप्त हो जाता है। यदि शान्ति नहीं मिली तो उसने भगवान् को जाना ही नहीं। यदि जानते तो तुम भी सुहृद् बनते। वे सुहृद् हैं, यह जानने से आप समझते कि उनका हमारे सिर पर हाथ है, आपके आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। मामूली राजा भी दयालु हो तो कोई दुःखी नहीं रहता, फिर वह महान् प्रभु राजाओं का राजा परम दयालु है। यह बात समझ में आ जाय तो कितनी शान्ति होनी चाहिये। इसके उदाहरण में क्षत्रिय बालक तथा राजा की कहानी देखनी चाहिये।

जो भगवान् को अपना सुहृद् समझ लेता है, उनको दयालु समझ लेता है, उसको कितना आनन्द होना चाहिये। हम लोग जब प्रभु को दयालु समझ जायेंगे तो हमारे दुःख चिन्ता सब भाग जायेंगे। भगवान् ने गीता में तीन बातें बतलायी हैं। एक-एक को धारण करने से शान्ति प्राप्त हो सकती है, तीनों को जान लेने पर तो आनन्द का पार ही न रहे।

यावन्मात्र जीवों को नारायण का रूप समझकर उनकी सेवा करे, वृक्ष को देखे तो देखे कि भगवान् ने ही वृक्ष का रूप धारण किया है। इस प्रकार हम भगवान् के तत्त्व को समझ जायेंगे तो भगवान् के मिलने में विलम्ब नहीं होगा।

भीष्म प्रतिज्ञाधारी चूंडाजी सीसोदिया

– डॉ. मातुसिंह मानपुरा

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में एक से बढकर एक कीर्तिमान व्यक्तित्व हुये हैं। वीरता के क्षेत्र में सिर कटने पर भी कदम पीछे न हटाने वाले अनगिनत योद्धाओं के सुकृत्यों का वर्णन है। अध्यात्म के लिये कदम उठे तो उच्चतम श्रेणी के भक्त कहलाये। देने का भाव जब जागृत हुआ तो अपने शरीर तक का मोह त्याग दिया। कलम की कारीगरी में अपना सानी नहीं रखने वाला क्षत्रिय उज्ज्वल पृष्ठों का साक्षी बना है। ऐसी ही धरोहर में चूंडाजी सीसोदिया का नाम अग्रिम पंक्ति में सुशोभित है। मेवाड़ महाराणा लाखा के पुत्र चूंडाजी का व्यक्तित्व तत्कालीन समय से लेकर वर्तमान तक अनूठे आदर्श का प्रतीक है। इस पितृभक्त श्रेष्ठ राजकुमार एवं महाराणा मोकल व कुम्भा के संरक्षक तथा मेवाड़ की मान-मर्यादा के जागरुक प्रहरी के जीवन वृतांत के सम्बन्ध में जानकर हमें गर्व होता है।

वृद्धावस्था में महाराणा लाखा के भरे दरबार में मंडोर राजघराने से शादी का नारियल (प्रस्ताव) इस शर्त के साथ आया कि रणमल राठौड़ की बहिन हंसाबाई के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही मेवाड़ की राजगद्दी का उत्तराधिकारी होगा। इसमें सबसे अनूठी बात यह थी कि जेष्ठ राजकुमार चूंडाजी उस समय दरबार में उपस्थित थे जो महाराणा के वास्तविक उत्तराधिकारी थे। उपस्थित बुद्धिजीवियों ने इसे शादी का नहीं, गृहयुद्ध का नारियल माना होगा लेकिन पितृभक्त श्रेष्ठ राजकुमार चूंडाजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुये राजगद्दी का उत्तराधिकारी न होने की प्रतिज्ञा की और इसे जीवन भर निभाया। यह अलग तथ्य है कि राजतंत्र में स्थापित इस त्याग का आदर्श लम्बे समय तक नहीं चला।

चूंडाजी ने भीष्म प्रतिज्ञा कर 'महाराणा' के पद से भी उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की। प्रतिज्ञा के अनुसार हंसाबाई के गर्भ से उत्पन्न राजकुमार मोकल को मेवाड़ का महाराणा बनाया और स्वयं उसके अभिभावक बने। मेवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु अथक प्रयास किया तथा मेवाड़ राज्य पर आक्रमण करने वाले शत्रु मांडू, मालवा व गुजरात के सुलतानों को मुंहतोड़ जवाब दिया। राज्यहित के लिये की गयी सख्त प्रशासनिक व्यवस्था से कुछ दरबारी असंतुष्ट थे। राजमाता हंसाबाई तक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपनी बात पहुँचा कर इस संदेह को जागृत किया कि चूंडाजी राज्य पर अधिकार करना चाहते हैं। इनके महत्त्वपूर्ण निर्णय बदले गये। चूंडाजी अपने सम्मान की रक्षा के लिये मांडू के सुलतान के पास चले गये। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा को विपरीत कोई कदम नहीं उठाया। मेवाड़ में मंडोर के शासक राव रणमल का प्रभाव बढने लगा। इनके नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने अजमेर आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया तथा गुजरात व मालवा के सुलतान भयभीत होकर अपनी सीमा में रहे।

दासी पुत्रों द्वारा राणा मोकल की हत्या के बाद कुम्भा मेवाड़ के महाराणा बने। महाराणा कुम्भा ने राव रिणमल राठौड़ के सहयोग से पिता के हत्यारों को समाप्त कर मेवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया। राव रणमल के बढते प्रभाव के कारण सीसोदिया इन्हें रास्ते से हटाने का प्रयास करने लगे तथा वि.सं. 1495 में धोखे से हत्या कर दी गयी। षड़यंत्रपूर्ण एवं अविश्वास के इस अस्थिर समय में महाराणा कुम्भा ने अपने पिता के बड़े भाई चूंडाजी को मांडू से मेवाड़ आने का निवेदन किया।

चूंडाजी के मांडू से आने के पश्चात् मेवाड़ी सेना को अनुभवी संरक्षक का नेतृत्व प्राप्त हुआ। राव रणमल की मृत्यु के बाद मेवाड़ की सेना ने मण्डोर पर अधिकार कर लिया जो वि.सं. 1510 तक रहा। वि.सं. 1499 में

(शेष पृष्ठ 32 पर)

पन्नाधाय खींची

– युधिष्ठिर

जिन महापुरुषों ने देश और धर्म की रक्षा की। जिन्होंने अपने कलेजे के टुकड़े को सिर्फ इसलिये दांव पर लगा दिया ताकि अपना वचन निभा सके। जहाँ स्वामीभक्ति और वफादारी हमारे संस्कार थे। जिससे न सिर्फ देश की रक्षा हुई बल्कि प्रताप जैसा स्वाभिमानी भारत को मिला। ऐसी उच्च कोटि की, उज्जवल चरित्र की, सात्विक विरांगना को, आज भ्रष्टतंत्र, अपनी कुर्सी बचाने के लिए, वोटों के लिए, ओछी राजनीति के लिए आज दूसरी जाति (गुर्जर) की बता रहा है।

पन्नाधाय राजपूत थी। क्षत्राणी थी। राजपूतों की गरिमा को ठेस पहुँचाने के लिए, राजपूतों के इतिहास को मिटाने के लिए हमें नीचा दिखाने के प्रयास कई वर्षों से चल रहे हैं।

'वीर-विनोद' (नया पुस्ताकार संस्करण) द्वितीय भाग पृ. 60 पर इस प्रकार लिखा है-''उदयसिंह को उसकी धाय पन्ना ने, जो खींची जाति की राजपूतानी थी, टोकरे में बैठाकर ऊपर से पत्ते-पत्तल से ढका और एक बारिन के सिर पर रखकर, स्वयं व उसके पति को साथ ले देवलिया की ओर रवाना हुई। रास्ते में बड़े-बड़े दुःख उठाते हुए रावत रायसिंह के पास पहुँची।

डॉ. रामकुमार ने 'बारी' का नाम 'कीरत' लिखा है (दीपदान नामक नाटक में) यह पन्ना को 'अन्नदाता' का सम्बोधन करता है जो किसी 'क्षत्राणी' को ही किया जा सकता है, 'गुजर' को नहीं।

'सर्वे आफ हिस्ट्री ऑफ खींची चौहान', लेखक डॉ. अख्तर हुसैन निजामी तथा रघुनाथसिंह खींची ने भूमिका के पृष्ठ 9 में पन्ना को 'खींचन' (खींची राजपूत) लिखा है।

टॉड ने 'टॉड लिखित राजस्थान' अनु केशव कुमार ठाकुर पृ. 184-185 पर लिखा है-''पन्नादाई खींची वंश के राजपूत परिवार में पैदा हुई और जीवन भर उसने चित्तौड़ के महलों में रहकर सीसोदिया वंश की सेवा की थी। वह सदा से ही राजवंश की शुभ-चिंतक रही थी।''

''मेवाड़ के महाराणा व शहंशाह अकबर'' में राजेन्द्र शेखर भट्ट ने पृ. 14-16 पर इस घटना का 'फुट-नोट' सहित वर्णन इस प्रकार किया है- ''महाराणा विक्रमादित्य को मारकर वणवीर वहाँ पहुँचा। उदयसिंह खींची जाति की राजपूतानी धाय पन्ना की देखरेख में आराम कर रहा था।''

ठा. ईश्वरसिंह मडाढ़, करनाल (हरियाणा) की अपनी ऐतिहासिक कृति 'राजपूत-वंशावली' को चेतना प्रकाशन नई दिल्ली से कुं. देवेन्द्रसिंह ने प्रकाशित करवाई थी, उसमें पृष्ठ 153 पर पन्नाधाय को खींची वंश की बतलाया है।

IN ANNALS OF RAJASTHAN, BY C.H. PAYNE M. A., PUBLISHED BY THE INDIAN SCHOOL SUPPLY DEPOT, CALCUTTA, IN THE YEAR 1918 NARRATES ON PAGE 61 THAT: "THE NURSE, A RAJPUTANI OF KHEECHI TRIBE" REGARDING 'PANNA DHAYA' (SEE SECOND SACK OF CHITOR)

'रावल राणा री वात' तथा 'वीर- विनोद', जो कि मेवाड़ का सुप्रसिद्ध प्रमाणिक एवं मान्य इतिहास ग्रन्थ है, में पन्नाधाय को खींची राजपूत वंश की बताया है।

राजमहलों अथवा जागीरों में ऐसी कोई पक्की प्रथा नहीं थी कि आवश्यकता पड़ने पर जब धाय का प्रबन्ध किया जाता था तो वो गूजरी ही हो। यह परिस्थिति पर निर्भर करता था।

महाराणा उदयसिंह की माता हाडी राजपूत थी और पन्ना खींची उसकी सेवा में थी। चूंकि पिछली कुछ पीढियों से मेवाड राजघराने में गुर्जर महिलाओं को धाय रखा जाता

रहा अतएव आज की पीढी के धाय-भाइयों ने अपना सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध 'पन्नाधाय' से जोड़ लिया है। इससे यह सामान्य मान्यता भी बन गई कि केवल गुर्जर महिलाओं को ही राज परिवार में धाय रखा जाता था, जो वस्तुतः सही नहीं है।

जो बहादुरी और त्याग का परिचय 'पन्ना' ने दिया है, पन्नाधाय के गुण तथा कर्म क्षत्रिय स्तर के हैं।

स्वामी भक्त वीरांगना पन्ना खींची वंश की ही थी। मेवाड़ की लोक-मान्यताओं एवं ऐतिहासिक स्रोतों को इतना भ्रमित करने वाला नहीं माना जा सकता कि एक गुजर महिला को खींची क्षत्राणी लिख दे। इन लोक- मान्यताओं और ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर ही कविराजा श्यामलदास, गौरीशंकर ओझा, जगदीशसिंह गहलोत, गोपीनाथ शर्मा जैसे अनेक वरिष्ठ दिग्गज इतिहासकारों ने भी मान्य कर अपने इतिहास ग्रन्थों में वीरांगना पन्ना को खींची क्षत्राणी ही लिखा है।

मध्यप्रदेश में राधोगढ़ एक खींची राज्य था। राधोगढ़ के इस खींची राजघराने ने ही कभी गागरोन और आसपास के 'खींचीवाड़ा' क्षेत्र पर शासन किया था। इस राजघराने के लिए भी मेवाड़ राजघराने हेतु प्रयुक्त 'विरुदों' का उपयोग किया जाता रहा है। निश्चित ही इसका कारण स्वामीभक्त पन्ना का इस वंश से सम्बद्ध होना ही रहा है।

डॉ. शक्तिदान जी 'कविया' (राजस्थानी विभाग) जोधपुर विश्वविद्यालय, धारावाहिक-14, रजवट की गौरवगाथाएँ, त्यागमूर्ति पन्नाधाय, 'राजपूत-एकता' (मासिक) अगस्त 1994 अंक पृष्ठ 16 पर लिखते हैं- ''स्वामी धर्म का पालन करने में अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करने वाली राजस्थान की क्षत्राणियों में प्रातः स्मरणीय 'पन्नाधाय' खींची वंश में जन्मी हुई आदर्श क्षत्राणी थी। उसके पिता शत्रुशाल खींची गागरोनगढ़ के अधिपति थे जिन्होंने सन् 1527 ई. (वि.सं. 1584) में खानवा के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध में राणा सांगा के पक्ष में अपना शौर्य प्रदर्शित कर वीरगति प्राप्त की थी। पन्ना का विवाह चित्तौड़ के एक प्रतिष्ठित समरसिंह सिसोदिया के साथ हुआ और उसके पुत्र भी हुआ, जिसका नाम चन्दन था। वैसे यह तथ्य सर्वविदित है कि राजघरानों में धाय का दायित्व उसी महिला को प्राप्त होता था जो अत्यन्त पवित्र आचरण की सद्गुण सम्पन्न नारी होती थी। पन्ना के मातृ-पितृ वंश की उज्ज्वलता एवं उसकी सचरित्रता के कारण ही उसे राणा सांगा के पुत्र उदयसिंहजी की 'धाय माँ' का प्रतिष्ठापूर्ण 'पद' मिला था। पन्नाधाय ने मेवाड़ के राजवंश की रक्षा करने का दृढ़-निश्चय कर अपने पुत्र 'चन्दन' को महाराणा उदयसिंह के पलंग पर सुला दिया और बालक महाराणा को अन्यत्र छिपा दिया। दुष्ट बनवीर ने आव देखा न ताव, महाराणा उदयसिंह समझकर पन्नाधाय के कलेजे के टुकडे को तलवार की धार से काटकर दो टूक कर दिये।

'मेवाड़-गौरव' ग्रन्थ, लेखक बाबू पद्मराज जैन के पृष्ठ सं. 87 पर पन्नाधाय को खींची वंशीय राजपूतानी प्रतिपादित किया गया है- ''उदयसिंह की अवस्था उस समय केवल 6 वर्ष की थी और उसका लालन-पालन एक खींची वंशीय राजपूत धाय के हाथ में था।

''उदयसिंह का जन्म कर्मवती हाड़ी रानी की कोख से 1522 ई. के लगभग बूंदी में हुआ था क्योंकि सभी इतिहासकारों ने राज्याभिषेक के समय सन् (1537 ई.) उसकी आयु 15 वर्ष की लिखी है। बनवीर द्वारा राणा विक्रमादित्य की हत्या सन् 1536 ई. में की गई। इससे उस समय उदयसिंह की अवस्था 13-14 वर्ष की रही है। और कर्मवती के जौहर के समय सन् 1533-34 के समय ग्यारह वर्ष की रही होगी। अतः उस समय उसे दूध पिलाने की स्थिति नहीं थी। वह समय तो उसकी 'सुरक्षा' तथा देख-रेख का था। और यह कार्य किसी विशिष्ट पारिवारिक व योग्य महिला को ही, सौंपा जा सकता है किसी साधारण गूजरी को नहीं। (''रम्याणि वीक्ष्य राजस्थान पूर्व आश्विन 1356 नामक ग्रन्थ में जो रवीन्द्र पुरस्कार से सम्मानित श्री सुबोध कुमार, चक्रवर्ती एक ख्याति प्राप्त लेखक ने उद्धृत किया है, ''राजकुमार उदय को 'पन्नाधाय' के हाथों में

सौंपकर रानी कर्णवती ने जौहर व्रत का अवलम्बन लिया था।'' –साभार राजस्थान : बंगीय दृष्टि में, सम्पादक पं. अक्षयचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 165 दृष्टव्य है।)

पन्नाधाय को गुजरी बताने का प्रयास ''धाभाई'' शब्द से किया जाता है। जब इस शब्द ''धाभाई'' का संधि विच्छेद किया जाता है धाय+भाई, तब ''धाय'' शब्द जाति सूचक लगने लगता है। वैसे साधारणतः गुर्जर महिलायें ''धाय'' हुआ करती थी। यदि हम 'भााषा शब्द कोष'' के सम्पादक डॉ. रमाशंकर शुक्ल एम. ए. डी. लिट. द्वारा दी गई ''धाय'' शब्द के भावार्थ को देखें-परखें तो ''धाय'' शब्द को संज्ञा स्त्री, (स. धात्री) ''दूध पिलाने वाली'' (पृष्ठ 843) परिभाषित किया है जिसका स्पष्टीकरण देखदेख और पालन–पोषण करने वाला ''संरक्षक'' अथवा ''संरक्षिका'' जो एक ''पद सूचक'' अवधारणा की ओर ध्यान आकर्षित करता है। लेकिन इसे जाति धाय भाई (धाभाई) तक ही इसे सीमित करके इसकी व्यापक एवं सार्थक परिभाषा करने में पूर्णत: जो चूक गए वे यह दुष्प्रचार कर रहे हैं।

''दीपदान एकांकी'' में सम्पादक डॉ. रामकुमार वर्मा ने पृष्ठ 59 पर पन्ना, कुँवर उदयसिंह का ''संरक्षण'' करने वाली धाय को उद्भाषित किया है अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि ''धाय'' किसी जाति अथवा सम्प्रदाय से अनुबन्धित न होकर एक ''पद'' अथवा एक उत्तरदायित्व की गरिमा को सुशोभित करने वाले शब्द के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा है।

यह मान्यता पूरी तरह गलत है कि माध्ययुगीन भारत के अधिकांश राज्यों में विशेषकर मेवाड़ में ''धाय'' माँ के रूप में गुर्जर जाति की सधप्रसूता महिला को ही ''धाय'' रखा जाता था। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रमाणित उदाहरण की बात करें तो उपरोक्त अवधारणा निर्मूल सिद्ध होती है। रूप जी ''माली'' (सैनिक क्षत्रिय) जोधपुर की सुपुत्री थी एवं गोपजी गहलोत की पत्नी थी। इसका इतिहासों और ख्यातों में कार्यकाल (1672–1704 ई.) माना जाता है। इन्होंने जोधपुर के राठौड़ राजवंश में ''राज धाय'' होने का सम्मान अर्जित किया था। महाराणा भोपालसिंह जी के समय के एक धाभाई अमरसिंह जी, वे जाति के ''माली'' थे। उनकी लड़कियाँ जोधपुर में विवाहित थी। इसी प्रकार जोधपुर के एक धाभाई भी अन्य जाति के थे। फिर भी यह सही है कि ऐतिहासिक साक्ष्य की नितान्त आवश्यकता है।

जौहर शाखा स्मारिका 1997, जो जौहर स्मृति संस्थान, चितौडगढ़ से प्रकाशित की गई है उसमें श्री रघुनाथसिंह खींची (इन्द्रोका), निदेशक, खींची चौहान शोध संस्थान ने अपने आलेख ''स्वामी भक्त पन्नाधाय'' में लिखा है कि ''यह तो माता से भी श्रेष्ठ उपाधि वाली, ''धात्री'' थी, जो बालक उदयसिंह की ''संरक्षिका'' एवं एक प्रकार से ''मौसी'' थी क्योंकि ''खींची'' एवं ''हाडा'' बान्धव होते हैं और बालक उदयसिंह हाडा चौहानों का दोहित्र था अथवा अन्य प्रकार से वह शिशोदिया राजवंश के गनायत खींची क्षत्रियों की राजकुमारी थी जो साधारण ''धाय'' कदापि नहीं बन सकती।

गूजर अब अनुचित लाभ हितार्थ पन्ना खींची को ''गुर्जरी'' बता रहे हैं। जब राष्ट्रीय नेताओं की मूर्तियाँ (स्मारक) लगने लगे व श्रीमती नरेन्द्रकंवर (मंत्री) ने पन्ना की मूर्तियाँ चितोंड व कुम्भलगढ़ में लगाने की घोषणा की तो गुर्जरों ने लाभ उठाना चाहा (वीर विनोद आदि से सुस्पष्ट है।)

पन्नाधाय खींची वंशीय क्षत्राणी थी। खींची चौहानों की ही एक शाखा है अतः चौहान वंशीय भी कह सकते हैं। –

DR. B.L. PANGARIA WRITES THAT "PANNA DHAI" WAS A KHICHI RAJPUT, THERE IS NO DOUBT ABOUT IT. PEOPLE SOME TIME MISUNDERSTOOD AS "DHAI" WORD IS GENERALLY USED FOR WOMAN OF "DHABHAI" COMMUNITY, WHO SERVED AS 'FOSTER MOTHERS' OF PRINCES, HOW EVER IN THE CASE OF 'PANNA DHAI' SHE IS POSITIVELY FROM THE 'KHINCHI CLAN OF RAJPUTS.'

सम्भव है ''पन्नाधाय'' के नाम को देखकर वर्तमान के इतिहास के कम जानकार लेखकों ने उसे ''गुजरी'' मान लिया है।

परम्परा से पन्नाधाय खींची राजपूतानी मानी जाती है।

''पन्नाधाय'' जिसे ''पन्नामाय'' कहना चाहिये, खींची चौहाण वंशीय थी यह जग विदित है। इतिहास लेखकों ने इस स्वामी भक्त राजभक्त क्षत्राणी को ''धाय'' कहकर इसकी गरीमा को कम करने का कुप्रयास किया है। राजघरानों में राजवंश के बच्चों को दूध पिलाने के लिये सेविकायें रखने की परम्परा थी जिन्हें ''धाय'' कहा जाता था। पर पन्ना इस प्रकार की ''धाय'' नहीं थी। वह तो खींची चौहान राजकुमारी थी। महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) की हाड़ा चौहान रानी से उत्पन्न हुए थे उदयसिंह। जबकि पन्ना, सिसोदिया राजवंश के गनायत खींची चौहान क्षत्रियों की राजकुंवरी थी। हाड़ा चौहान एवं खींची-चौहान आपस में बांधव होने से पन्ना उदयसिंह की मौसी थी।

डॉ. अख्तर हुसैन निजामी ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है। गागरोन के शासक राजा शत्रुशाल की पुत्री पन्ना देवी का विवाह चित्तौड़ के सामन्त सिसोदिया समरसिंह से हुआ था जिसकी कोख से पुत्र चन्दन का जन्म हुआ, जो बालक उदयसिंह की वय का था। राजा शत्रुशाल खींची ने 1527 ईस्वी में खानवा (कनवाह) के युद्ध में स्वामिभक्ति का परिचय देते हुये अपनी सेना सहित महाराणा सांगा के पक्ष में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। जब हाड़ी कर्मावती ने जौहर की तैयारी की तो अपनी बहिन के नाते बालक उदयसिंह को उसने पन्ना को सौंपकर जौहर व्रत का पालन किया।

(पन्ना) गुर्जरी नहीं, खींची (खींचन) थी। इसका सबसे पहले उल्लेख करीब 300 वर्ष प्राचीन ''रावल राणा जी री वात'' में हुआ है। इसका सम्पादन राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर के निदेशक डॉ. हुकमसिंह भाटी ने किया था। इसमें लिखा है -''वणवीर कटारी हाथ में लावे ऊभो रह्यो धाय सूं कह्यो बाबा कठे है? जद धाय कह्यो ढ़ोलिया ऊपर पोढ़ियो है जदी मांहे जाय कटारी वाही.... बारे निसरता पन्ना ''खींचण'' बोली सो बाबा यो थे कांई कियो'' (पृष्ठ 57)....

इस ग्रन्थ के आधार पर ही 'श्यामल दास' ने 'वीर विनोद' में पन्ना 'खींचण' ही लिखा है। (पृष्ठ 373)

अतः यह सुनिश्चित है कि पन्ना गुर्जरी नहीं ''खींचण'' थी।

''दीपदान'' एकांकी के पृष्ठ 70 पर ''पन्नाधाय'' अपने आपको ''राजपूतानी'' कहती है, पन्ना कहती है- ''मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूं। अपने बाल को दे सकूं। यही ''राजपूतानी'' का व्रत है। यही ''राजपूतानी'' की मर्यादा है। यही ''राजपूतानी'' का धर्म है। पृष्ठ 73 पर पुनः बनवीर का सम्बोधन पठनीय है; बनवीर कहता है- ''सारे 'राजपूतों' में एक ही धाय माँ है पन्ना। पृष्ठ 75 पर 'बनवीर-पन्ना' संवाद में पुनः पन्नाधाय अपने आपको ''राजपूतानी'' बताती है। बनवीर कहता है- ''तो उदयसिंह के बदले में जो मांगो दिया जावेगा।'' पन्ना कहती हैं- ''राजपूतानी व्यापार नहीं करती, वह या तो रणभूमि में चढ़ती है या चिता पर।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पन्ना गुर्जरी नहीं खींची (चहुआंण) वंशीय क्षत्राणी थी।

उपरोक्त वर्णित ''एकांकी सुषमा'' माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान की सैकण्डरी स्कूल की कक्षा 9 व 10 के लिये हिन्दी अनिवार्य की स्वीकृत पाठ्यपुस्तक है, जिसके सम्पादक डॉ. नरेन्द्र, भानावत, एसोशियेट प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर है और जिसे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर द्वारा 1990 में प्रकाशित किया गया है तथा माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

''मेवाड़ रावल राणा जी री वात'' पृष्ठ 57 पन्ना खींचण (चौहानों की एक शाखा) सत्यापित होती है जो कि एक अकाट्य प्रमाण है।

झूठा तर्क दिया जाता है कि महाराणा उदयसिंह ने पन्नाधाय के लिए उदययपुर में एक मन्दिर बनवाया था जिसका महन्त आज तक गूजर ही चला आ रहा है। वह मन्दिर

उदयपुर में किस स्थान पर है यह किसी को नहीं पता और मन्दिर का महन्त गूजर होना क्या यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि पन्नाधाय ''राजपूतानी'' न होकर गुजरी थी।

यह तर्क भी दिया जाता है कि पन्नाधाय बालक उदयसिंह को कुम्भलगढ़ ले गई थी क्योंकि वह कुम्भलगढ़ की ही रहने वाली थी। यह गलत है, बालक उदयसिंह को लेकर पन्ना सीधे कुम्भलगढ़ नहीं गई थी, किन्तु देवलिया, प्रतापगढ़, डूंगरगढ़ आदि कई राजाओं की शरण में गई थी, किन्तु किसी ने उसे संरक्षण नहीं दिया और अन्ततः कुम्भलगढ़ गई जहाँ के सरदार ''आशाशाह'' देपुरा ने सहर्ष उसे संरक्षण प्रदान किया। भेद खुलने के भय से उदयसिंह तो इस अवधि में कुम्भलगढ़ ही रहे, किन्तु ''पन्ना'' चित्तौड़गढ़ में लौट आई थी। बाद में पन्ना के साक्ष्यांकित और प्रमाणित करने पर उदयसिंह को मेवाड़ सिंहासन पर बैठाया गया था।

यदि हम इतिहास का गहराई से अध्ययन करें तो पता चलेगा कि ''पन्ना'' गढ़ गागरौन (वर्तमान जिला-कोटा) के शासक शत्रुशाल खींची (चौहान राजपूत) की पुत्री थी और उसका विवाह मेवाड़ (चितौड़) के वीर राजपूत योद्धा समरसिंह शिशोदिया के साथ हुआ था। समरसिंह सिसोदिया चित्तौड़गढ़ में ही रहते थे।

राजा शत्रुशाल अपने 6000 सैनिकों सहित महाराणा सांगा की ओर से बाबर के विरुद्ध खानवा के युद्ध में लड़े और वहीं पर शहीद हो गये थे। गढ़ गागरौन की वीर परम्परा को देखकर ही पन्नाधाय को महाराणा की ''धाय माता'' नियुक्त किया गया था।

यह इतिहास प्रसिद्ध है कि गढ़ गागरौन पर उन दिनों शत्रुशाल खींची का राज्य था। खींची शाखा राजपूतों के चौहान वंश की प्रसिद्ध शाखा है। शत्रुशाल के वंशज आज तक भी विद्यमान हैं जिनके साथ सीधा सम्पर्क किया जा सकता है और पन्ना की पूरी वंशावली प्राप्त की जा सकती है।

इसी तरह पन्ना के पति समरसिंह सिसोदिया चित्तौड़गढ़ के निवासी थे, मेवाड़ का राजवंश सिसोदिया है। अतः पन्ना का पितृवंश और पतिवंश दोनों ही शुद्ध राजपूत वंश हैं।

इतिहास वीर, वीरांगनाओं के बलिदानों का लेखा-जोखा है जो हँसते-हँसते मानवता के लिये मर मिटे थे। इन्हें पूज्य, आराध्य एवं वंदनीय ही समझना चाहिए। जो सच है उसे प्रकट करके इनका सच्चा इतिहास लोगों के सामने आना चाहिए और सच यही है कि-''पन्ना धाय थी खींची राजपूत।'' ●

यद्यपि परमेश्वर की कृपा एक महत्त्वपूर्ण चीज है, तथापि मनुष्य की अपने आपको निर्मित करने की धुन भी कम महत्त्व की चीज नहीं। जो आदमी अपने आपको बनाने के लिए बहुत कुछ कर सकता है, उस पर परमेश्वर की कृपा अनायास ही हो जाएगी। वह शीघ्रता से बढेगा और बाधाएँ भी नगण्य होंगी। दूसरी ओर जो केवल परमेश्वर की कृपा के सहारे बढेगा, उसमें कर्मनिष्ठा अवश्य आएगी पर धीरे-धीरे और बाधाएँ भी कठिन व अगणित होंगी। पर जिस पर परमेश्वर की अहेतु की कृपा है, उसके लिए कोई भी बात असम्भव और कठिन नहीं होती।

- पूज्य तनसिंह जी की डायरी से

संघ यात्रा

– स्व. गोपाल सिंह जालिया

श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रारम्भ को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है, कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक कौन है? श्री क्षत्रिय युवक संघ का हेतु क्या था? श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पूज्य श्री तनसिंह जी राजस्थान राज्य के बाड़मेर जिले के रामदेरिया ग्राम के सामान्य क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न देव पुरुष थे। ''होनहार बिरवान के होत हैं चिकने पात'' की कहावत के अनुसार पूज्य श्री तनसिंह जी विलक्षण प्रतिभा वाले थे। उनका सोच व चिंतन अद्भुत था। यह क्षमता उन्होंने छोटी आयु में ही प्राप्त कर ली थी। समाज के मनोविज्ञान का अनुभव उनके पूर्व जन्म की देन ही थी।

श्री सौभाग्य सिंह भगतपुरा ने पूज्य तनसिंह जी के जीवन के विषय में उनकी लिखी पुस्तक ''होनहार का खेल'' के प्राक्कथन में लिखा है ''श्री तनसिंहजी की ख्याति एक समाज संगठक, कर्मठ कार्यकर्ता, सुलझे हुए राजनीतिज्ञ, आध्यात्म प्रेमी, गंभीर विचारक और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के रूप में अधिक रही है। किन्तु इस प्रसिद्धि के अतिरिक्त उनके जीवन का एक पक्ष और भी है जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह एक तथ्य है कि वे एक कुशल प्रशासक, पटु विधिविज्ञ, सजग पत्रकार और राजस्थानी तथा हिन्दी भाषा के उच्चकोटि के लेखक और कवि भी थे।'' उनके साहित्य में देश, धर्म, संस्कृति और सामाजिक भावना प्रवाहमान धारा बनकर बही है जिसके रसास्वादन से प्रत्येक समाज प्रेमी की प्यास जागती है। जीवन सार्थक हो सकता है, उस भावना की धारा में गोता लगाने पर। उन्होंने एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का सृजन और प्रकाशन किया। जो हमारी महान संस्कृति व जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों से ओतप्रोत हैं। उसमें राजपूत संस्कृति और राजपूत इतिहस मुखरित है। एक योद्धा समाज के सतत् संघर्ष, अद्वितीय उत्सर्ग और महान संस्कृति का गौरवपूर्ण रूप शाश्वत सत्य गुंजित है। भूली विस्मृति के लिए भाव-कर्तव्य का स्मरणीय सन्देश झंकृत है। लेखक की अन्तर्तम पीड़ा, तड़फन, उत्सर्ग की महता और उत्थान की लालसा प्रत्येक शब्द में स्पंदित है।

झनकार नामक पुस्तक में उनके एक गीत से स्पष्ट होता है कि जिसमें श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना से पूर्व समाज की स्थिति की कल्पना की गयी है। समाज को नारी रूप (मातृरूप) में दीनहीन, बेहाल अबला के रूप में देखकर उनका सम्पूर्ण शरीर भय और वेदना से भर गया। जब उन्होंने पहिचाना कि यह मेरी कौम ही मेरी ओर सहायतार्थ आ रही है।

सहगायन की पंक्तियाँ :-

कहा था कि देखो, कहीं दूर गाती।
जो ऊंचे सितारों में कौन आ रही है?
ये सज्जा फटी सी है चिथड़े लपेटे।
निगाहें उठी पर अकिंचित सी लगती
बुझी सी है आशा का दीपक लिए जो।
निराश्रित सी कोई चली आ रही है।। कहा था....
किसी ने उदासी में आँखे चुराली।
कितने हैं उसके सहारा न कोई ।।
झोली नहीं है पसारी हैं बांहें।
तभी तो हमारी ही ओर आ रही है।। कहा था....
कहती मेरे आँसू की लज्जा किसे है।
भरे जग में मेरा भी कोई है अपना ।।
किसी पर भी कर्जा हो मेरा चुका दे।
बीड़ा फिराती चली आ रही है।। कहा था....
कहीं ये हमारी ही तस्वीर नहीं है।
युगों से जो भूली है उभरी गगन में ।
करें याद आओ पलकें बिछाएं।
अरे यह हमारी ही कौम आ रही है।। कहा था....

छोटी अवस्था में जब पूज्य श्री तनसिंह जी अध्ययनरत थे तब ही इस कौम की वर्तमान हीनावस्था की पीड़ा की चिनगारी प्रज्वलित हो गयी। उन्होंने ''गुंजे आज जगत के कौने'' सहगायन की पंक्ति में लिखा है कि ''चंवालिस की चिन्गारी ने सैंतालीस में आग लगाई।'' तात्पर्य यही है कि कौम ने बीड़ा फेरा, कि कौन सपूत है जो उसके कर्ज को चुकाने की हाँ भरता है। समाज में उसकी संतानों की कमी नहीं थी पर किसी ने उस बीड़े को नहीं उठाया। केवल पूज्य श्री तनसिंह जी ने यह दायित्व स्वेच्छापूर्वक लिया। 22 दिसम्बर, 1946 ई को कौम का ऋण जो हम सभी पर है, चुकाने का निश्चय किया और श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की।

जब श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई। उस समय समाज की अवस्था पतन की चरम सीमा पर थी। अज्ञानता, अशिक्षा का अंधकार समाज पर छाया हुआ था। जहाँ कुमति, तहाँ विपत्ति नाना की कहावत काम कर रही थी। वैमनस्य, घृणा ताण्डव नृत्य कर रही थी। स्वार्थवश भाई भाई का शत्रु बन बैठा था। सभी आलसी व प्रमादी होकर जीने लग गये थे। दरिद्रता बिना बुलाये ही आ रही थी। नेतृत्व कर्तव्यहीन बनकर ऐशो आराम में जा चुके थे। अहंभाव ने महाभारत काल से ही इस समाज में अपना पक्ष पक्का बना लिया था।

ऐसे परिवेश में श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई। संस्था के संस्थापक की अवस्था का भी थोड़ा चिंतन कर लें तो अप्रासंगिक नहीं होगा। अपनी अवस्था का वर्णन पूज्य श्री तनसिंह जी ने अपनी पुस्तक ''भिखारी की आत्मकथा'' में कई जगह पर किया है। पूज्य श्री तनसिंह जी जब बिरला जी के पिलानी कालेज में अध्ययनरत थे तब सेठ बिरलाजी को सम्बोधन करके इस तरह लिखा है,– ''तुम्हारी इसी गौरवमयी सदावृत संस्थान में मैंने भिखारी जीवन की दर्दभरी दास्तान का श्रवण किया। धन की कठिनाई को मैं शुरू से देख रहा था, पर स्वयं कमाकर भी मैं धन की कमी अनुभव करता था। तुम छात्रवृति दिया करते थे और मुझे भी तीन रुपये प्रतिमाह मिला करते थे। पर तुमने कमलकान्त सिंह को छोड़ दिया, जो हमारी ही भाँति भिखारी था। उसकी छात्रवृति का कोई उपाय नहीं था। मेरी भिखारी आत्मा ने मुझे झकझोर कर कहा, यह तीन रुपये जो तू ले रहा है, उस पर कमलकान्त सिंह का अधिकार है।, भिखारी की दशा पर भिखारी के मन में सहानुभूति उदय हुई। भिखारी अपने तीनों रुपये हर माह उस दीन भिखारी को देता गया। फिर भी बताया यही जाता था कि यह छात्रवृत्ति एक धनी मित्र का गुप्तदान है। शायद आज तक इस गुप्तदान के दाता का नाम कोई नहीं जानता, पर हम जानते हैं। तुम्हारी तो गुप्तदान की आदत कभी रही ही नहीं। तुम्हारे छात्रावास में हम भिखारी हाथ से रोटी बनाया करते थे। क्योंकि रसोइयों के खर्च से चलाया जाने वाला खाना हमारे लिए महंगा था। फिर भी पैसों की कमी पड़ती थी। मैंने तो तुम्हारे छात्रावास में नौकरी कर ली थी। और वहाँ से पैसे भी मिलते थे। भर मेरे भिखारी बन्धुओं की सेवा में खपकर कुछ भी बचता नहीं था। हम तीन भिखारी खास बन्धु भाव रखते थे क्योंकि हम तीनों पूरे धनहीन भिखारी थे। मैंने सेठ जी दातून बेचकर पैसे इकट्ठे किये। खेती के लिए चौदह क्यारियाँ ली और उनमें साग सब्जी लगाकर उन्हें बेचा। पर दैन्य की तो भिखारियों पर बड़ी कृपा रहती है, इसलिए आवश्यकताएँ भूखी ही रहती थीं। तीनों में से एक भिखारी के माता पिता का देहान्त हो गया। उसकी पढ़ाई के लिए मैंने नौकरी की ठान ली। पर छात्रावास के गृहपति ने सलाह दी कि पढ़ाई का तीसरा वर्ष मैं पूरा कर चुका हूँ। अब केवल एक ही वर्ष था। मुझे बी.ए. करने को कहा। उसने मुझे हिम्मत बंधाई और आर्थिक संकट के लिए सांत्वना दी। न जाने क्यों मैं उसकी बात मान गया। अन्यथा मैं आगे कभी नहीं पढ़ सकता था। आर्थिक कठिनाइयों से तंग आकर मैंने तुम्हारे उस छात्रावास के बर्तन मांजने का विचार किया पर आज तक यह बात किसी को नहीं कही। जाने चाहकर भी यह करना मुझे जंचा नहीं, क्यों? शायद मुझे खानदानी भिखारी होने

का गर्व था, और हमारे खानदान के हिसाब से यह कार्य निम्नकोटि का था। तुम्हारे यहाँ भिखारियों को भोजन बहुत ही सादा मिलता था और मैं परिश्रम बहुत करता था इसलिए मुझे रतौंधी हो गई थी।''

इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सेठजी के सदावृत में पूज्य श्री तनसिहजी ने अपना चिंतन व मनन का कार्य चालू रखा। अपने जीवन पथ-निर्देश दिशा को ढूंढ निकाला। उसी छात्रावास में रहकर भविष्य के ताने बाने बुने। भविष्य का इतिहास जब लिखेगा कि बिखरे हुए समाज में एक महान् संस्था ने संगठन का चमत्कार दिखाकर पीढ़ियों तक की प्रेरणा का मसाला तैयार किया, तब तुम परिचय दे सकते हो कि उस महान संस्था का श्री गणेश तुम्हारे इस छात्रावास में हुआ था। यहीं पर मैंने मेरे बिखरे हुए समाज की ईटों से भव्य इमारत बनाने के स्वप्न देखे थे। मैंने यह चमत्कार यहीं देखा था कि व्यक्ति अपने जीवन से किस प्रकार व्यक्ति की जीवनधारा में मोड़ ला सकता है। वहीं रहकर मैंने बंधुत्व का अमृतपान किया। वहीं से दीपक जलने शुरू हुए जिससे सारे समाज में कोटि कोटि युग के अंधकार को भगा दिया और उसी प्रकाश पर सैकड़ों पतंगें प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत हुए। पर वे सब बालक थे विद्यार्थी थे और सामान्य परिवार से सम्बन्धित ही थे।

उस समय समाज में अनेक वर्ग थे। राजा, बड़े सामन्त, और छुट भाई मुख्य तीन वर्ग थे। तीनों वर्गों में सामञ्जस्य नहीं था। अहम और स्वार्थ के कारण तीनों में भयंकर फूट थी। मतभेद इतना था कि वे एक दूसरे को भाई मानने में भी लज्जा का अनुभव करते थे थोड़ा बहुत अपनत्व का भाव बचा था तो केवल छुट भाइयों में। पू. तनसिंहजी समाज के सभी वर्गों को एक संगठन की श्रृंखला में बाँधना चाहते थे। इसलिए उनके सम्पर्क में आये। उन सभी भावों और विचारों को भिखारी की आत्मकथा में लिपिबद्ध किया है। इसमें कुछ अंश निम्न प्रकार से हैं-''मैं एक भिखारी हूँ। पर आप तो भिखारी के नाम से नाक सिकोड़ने लग गये हैं। जी हाँ मैं भिखारी (छुटभाई) तो हूँ पर हूँ खानदानी भिखारी। लो, आप तो हँसने लगे। अब मुझे निश्चय हो गया। आप तो कोई न कोई राजा होंगे। राजा तुम्हें दोष नहीं है। हम ऐसे समय में जन्में है, जब राजा का राज किसी पर नहीं चलता, केवल भाई पर चलता है और ऐसे समय में जन्में हैं, जब दुत्कार कर भी राजा अपने भिखारी भाई से स्वामिभक्ति का अधिकार रखता है। अफसोस है, राजा तुम अपने भिखारी भाई के लिए ईर्ष्या और डाह रखते हो, उसकी दुखभरी अवस्था को उर्पक्षा से टालते हो, और तुम्हारा भिखारी भाई तुम्हारी दुखभरी हालत पर आँसू बहाता है। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही है। समय किसी का इंतजार नहीं करता। राजा गया और दूसरा आया राजा। आये भी नये रास्ते से राज्य लेने, पर राजा बनकर नहीं क्रीत दास बनकर। जिससे राज लेना वाहते थे, उन्हीं के प्रशंसक बनकर। केवल इतना ही कहते रहे कि हम खद्दर नहीं पहनेंगे। एक मिली भगत चलती रही। भिखारियों का संगठन चौराहों पर मोड़ खाता गया। नवीन इतिहास लिखने का अवसर आया है, पर अब भी तुम अपना दिशा निर्देश तय नहीं कर पाये हो। राज तो तुमने गवाँ ही दिया। अब धर्म और सम्मानपूर्वक जीने का अवसर है, उसे भी गवाँ रहे हो। राजा के बाद दूसरा वर्ग था सामन्त वर्ग (बड़े भइया)। तुम्हें मैं इसलिए बड़े भइया कहता हूँ, कि तुम मुझे हमेशा छुट भैया कहते हो। 'भैया' शब्द कितना मीठा, सरल और महत्त्वपूर्ण है। पर बड़े भैया! तुमने कभी स्वप्न में भी मुझे भाई नहीं माना, फिर मुझे छुट भैया कैसे कहते हो? जिस काम में तुम बड़े हो, उसमें मैं कभी छोटा नहीं, फिर भी छुट भैया कैसे कहते हो?''

बड़े भाइयों की स्थिति भी ऐसी थी-''भाई साहब आपकी बुद्धि की कुशाग्रता की तारीफ किये बिना नहीं रह सकता। कैची सी चलती है, तुम्हारी बुद्धि। पर यह काम काटने का ही करती है। षडयंत्रों के तुम पर संस्कार हैं, क्योंकि इन्हीं के बल पर तुम राजा के यहाँ अपनी जगह

बनाये हुए थे। तुमने सत्तापक्ष से समझौता कर व्यक्तिगत सम्पत्ति जागीरों के अधिग्रहण का कानून बनवाने को तैयार होकर सत्तापक्ष की मदद की। तब भिखारियों ने तुम्हारे अपवित्र गठबंधन के खिलाफ आवाज उठाई। तब भी तुम अपनी षडयंत्रकारी आदत से बाज नहीं आये। तुम्हारे हित के लिए भिखारी जेल जा रहे थे। लाठियां खा रहे थे। अपमानित होकर दर दर भटक रहे थे। उस समय तुम्हारे दिल में बन्धुत्व की भावना तो क्या उनकी दुखती हालत को देखकर, तुम्हारे इस कंस हृदय में कभी दया भी आई थी?

भिखारियों के जीवन का एक इतिहास है। वे सदा पराजित रहे, पर जब कभी भी विजयी हुए, उन्होंने पराजितों पर सदा उदारता दिखाई है। इस समय मेरे दिल में भी तुमसे बदला लेने का कोई इरादा नहीं। मुझे तो केवल एक ही भय है कि समय आने पर तुम्हीं, हमारे किये कराये पर पानी न फेर दो। मैं जानता हूँ और इसलिए निश्चित हूँ कि एक दिन ऐसा आयेगा तब मुझे छुटभैया कहना भूल जाओगे, और अपना मानोगे। समय तुम्हारी आँखें अवश्य खोलेगा।''

यह अवस्था प्रारंभ काल की है। समय के अनुसार सोच और चिंतन बदला है। यह परिवर्तन तेजी से आये, इसके लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पूज्य श्री तनसिंह जी ने इतिहास का अध्ययन कर, शास्त्रों का मंथन कर मक्खन निकाला है। वह मक्खन श्री क्षत्रिय युवक संघ है। इसकी नींव (आधार) गीता का ज्ञान है। श्री क्षत्रिय युवक संघ का आधार शाश्वत आधार है। श्री क्षत्रिय युवक संघ का साध्य, साधना, साधक और साधन सभी की रचना गीता के अनुसार की गई है। गीता की मान्यतानुसार जीवन एक शाश्वत परम्परा है। हमारा यह जन्म सृष्टिक्रम में उखड़ी हुई इकाई नहीं है। बल्कि लम्बी श्रृंखला की एक कड़ी है। हमारा यह जन्म तो उस श्रृंखला की एक विकासमय क्रीड़ा है। क्योंकि परम्परा से हमारा यह जन्म इस प्रकार सम्बद्ध है, इसलिए अमुक संस्था अथवा अवस्था में पहुँचकर उद्देश्य का निर्माण अथवा परिवर्तन किया जाए, ऐसा मानना हमारा भ्रम है। हम चाहें जहाँ जिस संस्था, स्थान, काल, देश अथवा अवस्था को प्राप्त हों, हमारे जीवन का उद्देश्य और हेतु तो जीवन के पूर्व और पश्चात् भी सदैव निरन्तर रूप से सम्बद्ध रहता है।

हमें किसी संस्था के निर्माण अथवा सहयोग से पूर्व यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि क्या वह संस्था समाज के उपरोक्त महत्त्वपूर्ण अंश पर भी प्रकाश डालकर प्रयत्नशील है अथवा नहीं, जो अंश समाज और व्यक्ति के अस्तित्व का एक मात्र हेतु है। जन्म के साथ पूर्वजों की एक परम्परा भी प्राप्त होती है। उस परम्परा को हमारे माता पिता ने ही नहीं बनाया, बल्कि उनसे भी पीढ़ियों पूर्व पूर्वजों के संचित अनुभवों की प्राचीनतम काल से चली आने वाली त्याग और बलिदानों से सनी हुई ध्येय पालन की आनन्दमय परिपाटी है। इस परम्परा या परिपाटी के पालन करने की सम्यक कृतियों से ही संस्कृति का स्वरूप निर्माण होता है। किसी वस्तु के एक ही ढंग से बारम्बार प्रत्यावर्तन को परिपाटी कहते हैं। संस्कृति समाज के इतिहास में भूषण भूत सम्यक कृतियों को कहते हैं। किसी समाज में अनेक बार कायरता दिखाकर जघन्य जीवन व्यतीत करने का कार्य है तो वह संस्कृति का रूप नहीं बन सकता। कठिन परिस्थितियों में सम्यक सिद्धान्तों और भावनाओं से प्रेरित होकर जीवन व्यापी संघर्ष करने वाले समाज ने शान्तिकाल में भी मनोयोग की उसी उत्तमता को अक्षुण्ण रखा अथवा नहीं यही कसौटी संस्कृति की महानता और उच्चता की है। यही सिद्धान्त और भावनाएँ मानव जीवन को महान् सुखमय और पवित्र बनाती हैं।

गीता ने धर्म को व्यापक अर्थ में स्वीकार किया है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है धारण करना। महाभारत में इसका उल्लेख है –

धारणार्द्धर्भ मित्याहुः र्धो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारण संयुक्त सर्ध इति निश्चयः।।

म. भा. कर्ण पर्व 69/59

धर्म से ही सारी प्रजा बंधी हुई है। यह निश्चय किया गया है कि जिससे सब प्रजा का धारण होता है वही धर्म है।

धर्म के छूटने के साथ समाज के सारे बन्धन छूट जाते हैं और व्यक्ति व समाज की परिस्थिति आकर्षण शक्ति के लुप्त होने के कारण सौर मण्डल की भाँति अस्त व्यस्त हो जाती है। गीता ने जहाँ कहीं भी धर्म शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ उसका वही अर्थ है जो उपरोक्त श्लोक में निहित है। इस दृष्टिकोण से स्वधर्म का अर्थ हुआ, अपने आपको धारण करने वाला तत्त्व। स्वधर्म के बिना व्यक्ति का अस्तित्व सार्थक नहीं होता। धर्महीन होकर वह सृष्टिक्रम द्वारा धारण नहीं होता। व्यक्ति जब तक अपने धर्म का स्वरूप जानकर उसका आचरण नहीं करता, तब तक उसका जीवन अधूरा ही नहीं बल्कि निरर्थक है। इतना ही नहीं धर्माचरण न करना पापों का उपार्जन करना है।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।

गी. 2/33

धर्म का थोड़ा सा भी साधन अथवा आचरण बड़े भय से सरंक्षण देता है। जिस प्रकार ऊपर बताया जा चुका है, मनुष्य अपने जीवन के साथ उसकी परम्परा के गुण लेकर आता है, उसी प्रकार वह उन्हीं गुणों से वशीभूत होकर कार्य किया करता है।

ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।

गीता 18/41

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म उनके स्वभावजन्य अर्थात् प्रकृतिसिद्ध गुणों के अनुसार पृथक पृथक बांटे हुए हैं। प्रत्येक वर्ण का इस दृष्टिकोण से गीता ने कर्म निरूपण किया है –

शमो दमस्तपः शौर्च क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावनम्।।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायजम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।
कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।

गी. 18/42-44

ब्राह्मण का स्वभावजन्य कर्म-शाम, दमः, तपः पवित्रता, शान्ति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता है। क्षत्रिय का शूरवीरता, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध में पीठ न दिखाना, दान और ईश्वरीय भाव से राज्य करना स्वाभाविक कर्म है। वैश्य का कृषि, गोपालन, वाणिज्य स्वाभाविक कर्म है। शूद्र का सेवा करना स्वाभाविक कर्म है। गीता क्योंकि खिचड़ी पकाने के पक्ष में नहीं है। वह शूद्र को ब्राह्मण और क्षत्रिय को वैश्य के कर्म करने की अनुमति नहीं देती। समानता के आधार को मानकर इतर व्यवस्था से वर्षों की स्वाभाविक योग्यता तो कम होती ही है, किन्तु उससे मानव जीवन का ध्येय साधन भी नहीं होता।

व्यक्ति का जन्म स्वधर्म का हेतु है, और जन्म प्रकृति की एक क्रिया है। इसलिए स्वधर्म जीवन का प्राकृतिक विकास है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि स्वधर्म हमारे जीवन के विकास का प्राकृतिक साधन है। संगठन समाज की प्राकृतिक अवस्था है। समाज के मूल में संगठन की भावना है। अतः संगठित होकर स्वधर्म का पालन करना आज के आर्यपुत्र का एक मात्र और परम साधन है। गीता ने प्रकृति और धर्म को इस प्रकार जोड़ दिया है, कि धर्म त्याग को अप्राकृतिक मानकर असंभाव्य माना है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।

गी. 3/33

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अथवा स्वभाव के अनुसार चेष्टा करता है, क्योंकि समस्त प्राणी अपनी प्रकृति के वश होने से उसी का अनुगमन करते हैं, इसमें किसी का निग्रह क्या होगा?

आज हमारे समाज में इस प्रकार के कार्यकर्ता हैं, जो विश्वप्रेम आदि के आकर्षक सिद्धान्तों की ओर बहकर नये धर्मों के नये मनु बनना चाहते हैं। कई लोगों ने इस दिशा में अथक परिश्रम किया है और स्वयं आदर्श रखकर

समाज को भी अपने पीछे खींचने का प्रयास किया है। किन्तु परिणाम यह बताता है, कि उन्हें सामाजिक सिद्धि तो दूर रही, निजी स्थिति को स्थिर रखने की भी सफलता नहीं मिली। गीता इसका उपरोक्त श्लोक में कारण बताती है, कि अपने स्वभाव, प्रकृति के विरुद्ध किसी का हठ काम नहीं देता। फिर भी हमारे नेताओं को अपनी कार्य शक्ति का बड़ा भरोसा होता है। वे अपने पराक्रम से इतिहास निर्माण करने की कामना करते हैं। इतिहास पराक्रम से ही निर्मित होता है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु प्रकृति से प्रतिकूल इतिहास बनाने की संभावनाएँ आकाश कुसुम की भाँति हैं। क्षत्रिय पीढ़ियों से 'धारा स्नान' को ही तीर्थ मानते आ रहे हैं, वे आज अचानक उसे छोड़कर अहिंसा के अवतार बनकर गाँधी के चेलों में नाम लिखाना चाहते हैं, तो गीता उन्हें भी सतर्क करती है :-

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।

गी. 18/59

यदि तू अहंकार का आश्रय लेकर ऐसा मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव तुम्हें युद्ध के लिए बाध्य करेगा। अतः क्षत्रिय समाज का जागरण का कार्य श्रमदान और चर्खा कताई से नहीं होने का, अहिंसा का सीमोल्लंघन कर प्रहार करने वाले शत्रु की ओर सिर झुकाने से भी नहीं होगा और न होगा सत्याग्रह से। हमारी शताब्दियों की साधना भी ऐसा करने में असमर्थ रहेगी, क्योंकि यह हमारे वंश की बीमारी नहीं है। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि गी. 2/27 इस बिना उपाय वाले विषय में तुझे शोक नहीं करना चाहिए। **(क्रमशः)**

पृष्ठ 21 का शेष

भीष्म प्रतिज्ञाधारी चूंडाजी सीसोदिया

मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को मेवाड़ की सेना ने कुम्भलमेर में तथा वि.सं. 1503 मांडलगढ़ व वि.सं. 1512 में भी युद्ध में परास्त किया। कुम्भा के राज्यकाल के तीन बड़े शत्रु गुजरात, मालवा व नागौर के सुलतान थे जिन्हें परास्त करने में चूंडाजी सीसोदिया का वीरता-धीरता पूर्ण व्यक्तित्व एवं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन मेवाड़ की प्रतिष्ठा बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण रहा। यदि महाराणा कुम्भा के पुत्र-पौत्र आपसी द्वेषपूर्ण भावना से ग्रसित नहीं होते तो चूंडाजी की त्याग परम्परा से पोषित मेवाड़ का इतिहास इस्लाम की क्रूर आँधी को रोकने में सक्षम होता।

इतिहास के पृष्ठों में राज्य एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु संघर्ष तथा विश्वास-अविश्वास निरंतर चलने वाली कहानी रही है लेकिन वर्तमान के समाजदर्शन में चूंडाजी के व्यक्तित्व के अध्ययन-अध्यापन की पुन: आवश्यकता है। आज पिता-पुत्र व भाइयों के मध्य स्नेह का अभाव निरंतर बढ रहा है। छोटे-छोटे स्वार्थ मनमुटाव का कारण बन रहे हैं। चूंडाजी ने पिता की इच्छा का सम्मान करते हुये अपना सबसे बड़ा अधिकार त्याग दिया और उस प्रतिज्ञा को जीवनभर निभाया, दूसरों की सहायता से भाइयों के साथ टकराव नहीं किया। चूंडाजी सीसोदिया को निस्वार्थ त्याग के कारण महाराणाओं से भी उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। श्रेष्ठ इतिहास पुरुषों में भी इस व्यक्तित्व की गणना प्रथम स्थान पर हुयी है। इतिहास समीक्षक कवि के अजर-अमर शब्द हमारा मार्गदर्शन करते हैं-

उदियापुर चूंडो अचल, ज्यूं शेखो आमेर।
दुरगो मांझी जोधपुर, कांधल बीकानेर।।

अपनी बात

उपनिषद में ययाति की कथा है। ययाति मरने के करीब आया। उसके सौ बेटे थे। सौ वर्ष जिया, पूरी उम्र लेकर मर रहा था। लेकिन जब मौत ने दरवाजे पर दस्तक दी और मौत ने कहा–ययाति तैयार हो जाओ। उपनिषद की बात है, अब तो मौत न दस्तक देती है और न तैयारी का अवसर देती है। मौत ने कहा–ययाति तैयार हो जाओ मैं आ गई। ययाति चौंका। ययाति ने हाथ जोड़कर कहा–क्षमा करो मैं तो जीवन गंवाता रहा। सौ वर्ष ऐसे ही बीत गए पता ही न चला। मैंने तो व्यर्थ में गंवा दिए दिन। किस मुँह से परमात्मा के सामने खड़ा होऊँगा। नहीं–नहीं मुझे ले मत जाओ। एक अवसर मुझे और दो। यह भूल दुबारा नहीं होगी। करने योग्य कुछ कर लूं। किस मुँह से परमात्मा के सामने खड़ा होऊँगा? क्या जवाब दूंगा?

मौत को दया आ गई। मौत ने कहा–ठीक है। लेकिन किसी को मुझे ले जाना ही होगा। क्या तुम्हारा कोई बेटा जाने को राजी होगा?

सौ बेटे थे ययाति के। ययाति ने अपने बेटों की तरफ देखा। उसका कोई बेटा अस्सी साल का था, कोई सत्तर साल का था। वे अधिकांश तो बूढे होने के करीब थे। अस्सी साल के बेटे ने नीची नजर कर ली। अन्य बेटे भी नीची नजर करते रहे। सबसे छोटा बेटा उठ खड़ा हुआ। वह अभी जवान ही था। सत्रह–अठारह वर्ष का होगा। उसने मौत से कहा–मुझे ल चले। मौत को उस पर दया आई। मौत ने कहा कि तेरे और बड़े भाई हैं, वे कोई राजी नहीं होते, तू क्यों जाता है? अपने बड़े भाइयों से क्यों नहीं पूछता कि वे राजी क्यों नहीं हुए?

उसने पूछा अपने बड़े भाइयों से–आप जाने को राजी क्यों नहीं हैं पिता के लिए जीवन नहीं दे सकते?

बड़े भाइयों ने कहा कि जब पिता सौ साल के होकर राजी नहीं है, तो हम तो अभी उनसे बहुत छोटी उम्र के हैं। अभी तो हमें जीने के लिए और दिन पड़े हैं और जिस तरह पिताजी नहीं कर पाए जो करना था, हम भी वह कहाँ कर पाए हैं। पिताजी को तो सौ वर्ष मिले थे नहीं कर पाए, हमें तो अभी सौ वर्ष मिले ही नहीं हैं। अभी जितने वर्ष बाकी हैं, उनमें हम कुछ कर लेंगे।

पर जवान बेटा तैयार था। उसने कहा–मुझे ले चलो। मौत ने कहा–तू मुझे पागल मालूम होता है। तू तो अभी जवान है, अभी तुमने कुछ नहीं देखा है।

उसने कहा–जब सौ वर्ष में मेरा पिता कुछ न देख पाए, तो मैं भी क्या देख पाऊँगा? अस्सी वर्ष में मेरे भाई नहीं देख पाए, सत्तर वर्ष में मेरे भाई नहीं देख पाए तो मैं भी क्या देख पाऊँगा? मेरे निन्यानवे भाई कुछ नहीं देख पाए, मेरे पिता कुछ नहीं देख पाए। पिता सौ वर्ष बाद भी मांग कर रहे हैं कि जीवन और चाहिए। इतना ही पर्याप्त है मुझे दिखाने को कि यहाँ दिन सोए–सोए बीत जाते हैं। तुम मुझे ले ही चलो। मेरा जीवन मेरे पिता के भी काम आ जाए तो भी सार्थक उपयोग होगा। मैं निरर्थक नहीं गमाना चाहता। यह कम से कम कुछ सार्थक उपयोग है कि मैं पिता के काम आ गया। इसकी तो सान्त्वना रहेगी, संतोष रहेगा।

ययाति को पुत्र द्वारा दिए गये सौ वर्ष भी बीत गये, फिर मौत आई और वही की वही बात थी। ययाति फिर रोने लगा। बोला–क्षमा करो, मैं तो सोचता रहा कि सौ वर्ष पड़े हैं, अभी क्या जल्दी है? जी लेंगे। फिर मैं पुराने धंधों में ही लग गया। सौ वर्ष थे, बड़ा लम्बा समय था, पर वह भी गुजर गया, पता ही न चला। कैसे गुजर गए पता ही न चला। मुझे क्षमा करो, एक अवसर और। कहानी कहती है, बार–बार अवसर मिले, पूरे एक हजार साल ययाति जिया और जब हजारवें साल में मरा तब भी रोता हुआ ही मरा।

यह तो कहानी थी ययाति की। अब जरा हम हमारी बात सोचें। जब मौत आ खड़ी होगी द्वार पर तो क्या ययाति की तरह रोने का अवसर मिलेगा कि मैं कुछ नहीं कर सका। जिस कुल में प्रभु ने जन्म दिया, उस कुल की

परम्परा मेरे जीवन का अंग नहीं बन सकी। अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए, जीवन में निखार लाने के लिये मैंने कुछ नहीं किया। साधना मार्ग के माध्यम से सद्संस्कारों को जीवन में उतार नहीं सका। पुण्य का कोई अनुभव ही नहीं कर पाया। मैंने अपने आपको जाना ही नहीं। अस्तित्व से मेरा कोई तारतम्य ही नहीं बैठ सका। कहानी में ययाति को मौत छोड़ देती है, वैसा कुछ नहीं होना है। अत: जागें, अभी जागें, कल पर न टालें। टालने पर ही भूल जाते हैं, भटकाव हो जाता है। कल का कोई भरोसा नहीं, कल आएगा भी या नहीं। अत: निर्णय आज ही लें। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने वह साधना प्रणाली दी है, जिसमें निरंतर कर्मरत रहने से जीवन सार्थकता की राह पर चलता रहता है। ऐसे में मौत भी आ जाए तो बड़े प्रेम से, बड़ी प्रसन्नता से परमात्मा के सामने खड़ा होने की स्थिति बनती है, क्योंकि परमात्मा का सौंपा हुआ काम करने की ही राह पर चला हूँ। ●

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं –

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान, मार्ग आदि
01.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	3.11.2024 से 6.11.2024 तक	बडोड़ा गाँव (जैसलमेर)
02.	मा.प्र.शि.	4.11.2024 से 10.11.2024 तक	मालजीभी पीपड़िया, तह. जामकण्डोरना (राजकोट)
03.	मा.प्र.शि. (बालिका)	5.11.2024 से 11.11.2024 तक	थोरड़ी–तह. जामण्डोरना (राजकोट)
04.	प्रा.प्र.शि.	14.11.2024 से 17.11.2024	सर (जोधपुर)
05.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	25.12.2024 से 28.12.2024	सकानी (डूंगरपुर)
06.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	26.12.2024 से 28.12.2024	जयमल कोट, पुष्कर (अजमेर)
07.	मा.प्र.शि.	30.12.2024 से 5.01.2025	राजपूत समाज धर्मशाला, रामदेव मंदिर परिसर कचनारा (नाहरगढ) मंदसौर (मध्यप्रदेश) मंदसौर से नाहरगढ रूपनी बिशनिया जाने वाली सड़क पर रामदेव मंदिर कचनारा उतरें।
08.	मा.प्र.शि.	11.01.2025 से 15.01.2025	हैदराबाद (तेलंगाना)

बाड़मेर, देचू (जोधपुर), देऊ (नागौर) में भी माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर होने हैं परन्तु शिक्षा विभाग द्वारा शीतकालीन अवकाश की घोषणा नहीं होने के कारण समय अभी तय नहीं है। अवकाश की घोषणा के अनुसार ही शिविर का समय रखा जाएगा।

गजेन्द्र सिंह आऊ

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
SS KIRTEE
AN ISO 9001 : 2015 CERTIFIED COMPANY
Piping is Our Business Satisfaction is Our Goal
17425
CML-8600120461
IS:12786
CML-8600120457
IS:4984
CML-8600120464
Mr. Surendra Singh Shekhawat
Director
Shree Ganesh Enterprises
Manufacture Of:-
SS KIRTEE BRAND ISI HDPE Sprinkler Pipe
Mini Sprinkler System | HDPE Pipes & Coils For Water
SHREE GANESH ENTERPRISES
Khasra No. 315/6, 317,318, RIICO Road, Prasrampura, SKS Industrial Area
Reengus, Sikar (Rajasthan)
8209398951 surendrasinghshekhawat234@gmail.com
GANESH
HOTEL
Ganesh Singh Maharoli
Datar Singh Maharoli
Opp. Polovictory Cinema. Station Raod, Jaipur | Contact No. 9929105156

दीपावली के पावन पर्व पर सभी
स्नेहिल बंधुओं को हार्दिक शुभकामनाएं।।

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy,
Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda,
Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

नवम्बर, सन् 2024
वर्ष : 61, अंक : 11

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

श्री संघशक्तिप्रकाशन प्रन्यास (स्वत्वाधिकारी) के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक राजेन्द्र सिंह राठौड़ द्वारा भास्कर प्रिंटिंग प्रेस, डी बी कोर्प लिमिटेड, प्लोट नंबर-01, मंगलम कनक वाटिका के पीछे, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, रेल्वे क्रोसिंग के पास, बिलवा, शिवदासपुरा, टोंक रोड़, जयपुर (राजस्थान)-303903 (दूरभाष -6658888) से मुद्रित एवं ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर- 302012 (दूरभाष- 2466353) से प्रकाशित। संपादक राजेंद्र सिंह राठौड़ । Email : sanghshakti@gmail-com | Website : www-shrikys-org